Con. 3. VII. 26. 48
350

अंक 7
संख्या 26

सोमवार,
27 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 1715-1788

[अनुच्छेद 47, नया अनुच्छेद 47-ए, अनुच्छेद 48, नया अनुच्छेद 48-ए और अनुच्छेद 49 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 27 दिसम्बर 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः दस बजे उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

***उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी):** मुझे अभी हमारे अध्यक्ष का एक पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने मुझे सूचित किया है कि उनका स्वास्थ्य काफी सुधरा है, किन्तु तबीयत थोड़ी-सी फिर खराब हो जाने से उन्हें कुछ दिन आराम करना पड़ा है। किन्तु उन्हें आशा है कि वे अगले वर्ष के आरम्भ तक यहां आ जायेंगे और 3 जनवरी से परिषद् की कार्यवाही स्वयं चलाना आरम्भ कर देंगे। मुझे विश्वास है कि परिषद् मुझे अनुमति देगी कि मैं उन्हें अभिवादन भेजूं तथा उन्हें विश्वास दिलाऊं कि हम उनका कार्य हल्का करने के लिये यथासम्भव प्रगति करने का प्रयत्न करेंगे। क्या परिषद् की ऐसी इच्छा है?

***सदस्यगण:** हां, हां।

विधान का मसौदा-(जारी)

अनुच्छेद 47

***उपाध्यक्ष:** अब हम वाद-विवाद पुनरारम्भ करेंगे और अनुच्छेद 47 से शुरू करेंगे।

(संशोधन संख्या 1102 और 1103 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1104, 1105 और 1106 सदृश आशय के हैं; संशोधन संख्या 1104 पेश नहीं किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1104, 1105, 1106 और 1107 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 1108 प्रोफेसर के.टी. शाह का है। मैं उनका ध्यान नये उप-खण्ड अर्थात् उप-खण्ड (घ) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसे इस संशोधन द्वारा जोड़ने का प्रस्ताव किया जा रहा है। वे कृपया इसकी अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) से तुलना करें। यह उन्हें निश्चय करना है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) में कुछ योग्यतायें दी हुई हैं। मैं जो प्रस्ताव करना चाहता हूं वह नकारात्मक ढंग का है, अत: मेरे विचार में दोनों साथ-साथ चल सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, क्या मैं पेश कर सकता हूं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह बता सकता हूं कि इस संशोधन के दूसरे भाग के पेश होने में पहले ही रुकावट है। हमने अनुच्छेद 46 को पहले ही संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया है, जिसके अनुसार प्रधान कितनी ही बार चुना जा सकता है। अत: इस संशोधन के उत्तरांश में रुकावट हो जाती है और वह पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने जो कुछ कहा वह आपने सुन लिया है?

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, वह मैं सुन चुका हूं। मैं फिर निवेदन कर सकता हूं तो उससे भी उसी बात की पुष्टि होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह अन्तिम रूपेण कैसे पारित हो गया।

***उपाध्यक्ष:** आप जो कुछ कहना चाहते हैं मैं उसे किसी तरह रोकना नहीं चाहता, किन्तु मुझे यह अवश्य दिखाई देता है कि उसकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं अपनी मर्जी आप पर लादना नहीं चाहता।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं अच्छी तरह समझता हूं कि अनुच्छेद 46 में इस नये परिवर्तन का प्रभाव उत्तरांश पर पड़ता है, अत: मैं उस अंश को पेश नहीं करूंगा। दूसरा भाग अभी शेष है और यदि आप मुझे अनुमति देंगे तो दूसरे भाग को पेश करूंगा।

***उपाध्यक्षः** हां।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के पश्चात् निम्न नया उपखण्ड रख दिया जाये:

'(d) and is not disqualified by reason of any conviction for treason, or any offence against the State, or any violation of the Constitution.' "

[(घ) और देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथवा संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य न ठहराया गया हो।]

संशोधित खण्ड इस प्रकार बन जायेगा:

"कोई व्यक्ति प्रधान निर्वाचित होने का पात्र न होगा जब तक कि वह:

(क) भारत का जनपद न हो,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो,

(ग) लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता न रखता हो, और

(घ) देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथवा संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य न ठहराया गया हो।"

जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मैं संशोधन रखना चाहता हूं उसमें नकारात्मक पहलू पर अर्थात् निर्योग्यताओं पर बल दिया गया है, जब कि खण्ड (क), (ख) और (ग) में योग्यताओं पर बल दिया है। हां, परिषद् ने अनुच्छेद 46 के मौलिक मसौदे में सन्निहित बाधाओं को हटा दिया है, जिसके अनुसार कोई भी दुबारा प्रधान के पद पर आसीन नहीं हो सकता था। मैं इस निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। हां, मुझे खेद है कि परिषद् को यह बात पसंद आ गई, क्योंकि मुझे आशंका है कि प्रधान के पद पर असीमित समय के लिये रहने की सम्भावना से अवांछनीय परिणाम हो सकते हैं, जिन पर अब किसी को अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, आपको स्मरण है कि रोम जनतंत्र की नींव, अथवा उसका नाश कहिये, सीज़र को आजीवन कांसल बनाकर रखी गई थी, जो बाद में वंशगत साम्राज्य बन गया। किन्तु जैसा कि मैं आरम्भ में ही कह

[प्रो. के.टी. शाह]

चुका हूं, अब परिषद् ने बुद्धिमतानुसार इस बाधा को प्रविष्ट करना अवांछनीय पाया है, अत: मैं परिषद् की शुभभावना को स्वीकार करता हूं और अपने संशोधन के उत्तरांश पर ज़ोर नहीं देता।

फिर भी मैंने अपने संशोधन में जो योग्यतायें सुझाई है, मेरे विचार में उन्हें स्पष्टत: तथा विशिष्ट रूप से रखना चाहिये। ऐसा कहना व्यर्थ है कि यह सब कुछ तो स्पष्ट है ही; और कोई मनुष्य, जिसमें जरा भी अक्ल हो, ऐसे मनुष्य को प्रधान नहीं बनाना चाहेगा, जो देश-द्रोह का अपराधी हो अथवा जिसने विधान का उल्लंघन किया हो। श्रीमान्, कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें साधारणतया लोग समझते ही हैं, पर हो सकता है कि भविष्य की अज्ञात परिस्थितियों में अथवा दलों के मोह में, और निर्वाचन के जोश में उनकी पूर्णत: उपेक्षा कर दी जाये और फल यह हो कि वे सब निर्योग्यतायें ध्यान में ही न रखी जायें।

अत: इस स्पष्ट निर्योग्यता का समावेश ऐसा अभिरक्षण है जिससे विधान स्वतंत्र रूप से तथा ईमानदारी से कार्यान्वित किया जा सके और जो, मेरे विचार में, परिषद् को स्वीकार्य होना चाहिये।

देश-द्रोह विषयक निर्योग्यता विशेषत: महत्वपूर्ण है, क्योंकि अब इस बारे में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जैसे कि तथाकथित युद्ध-अपराधों के लिये पराजित शत्रुओं पर मुकद्दमा चलाया जाना है। देश-द्रोह विषयक निर्योग्यता का विशेष महत्व है और विशेषतया वह इसलिये और भी है क्योंकि ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनसे कि किसी भी व्यक्ति के मन में यह विचार पैदा हो सकता है कि तथाकथित युद्ध-अपराधों के लिये पराजित शत्रुओं पर चलाये गये मुकद्दमों के समान ही उस पर ईमानदारी से किये गये उसके काम को भी उसकी हार के कारण तथा दलजनित उत्तेजनाओं के कारण दण्डनीय समझा गया है और उस काम के लिये उस पर दोष या अभियोग लगाया गया है और उस समय वर्तमान परिस्थितियों में न तो उसको अपनी सफाई पेश करने की सुविधा है और न उससे बचाव का अन्य कोई प्रभावी मार्ग है।

इस आशंका से मैं इस विषय में कोई संदेह की सम्भावना शेष नहीं रहने देना चाहता। विधान में यह बात शुरू से ही स्पष्ट कर देनी चाहिए कि देश-द्रोह के अपराध पर दण्डित कोई भी व्यक्ति प्रधान पद के लिये चुने जाने के अयोग्य होगा। मुझे यह दिखाई देता है कि इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती; यद्यपि मेरा संशोधन तो मुलायम शब्दों में है गो कि मैं विधान के उल्लंघन को बड़ा भारी पाप मानता हूं, और मेरा पक्का विश्वास है कि यह

भी ऐसी निर्योग्यता ठहरा देनी चाहिये जिसके कारण कोई भावी उम्मीदवार प्रधान पद के लिये खड़ा न हो सके।

बाद के खण्डों को देखने से पता चलता है कि किसी व्यक्ति को संविधान के अतिक्रमण के अपराध में दण्डित किये जाने के बारे में ऐसे प्रावधान रखे हैं कि वह झूठे रूप से बच सके। यदि उन अभिरक्षणों के रहने पर भी, कानून के समुचित उपक्रम के अनुसार तथा न्याय के उचित प्रशासन के अनुसार, कोई मनुष्य किसी गम्भीर बात पर विधान के उल्लंघन के बारे में उचितरूपेण दण्डित हुआ है, तो मैं समझता हूं कि इस दण्ड का एक फल यह भी होना चाहिये कि वह उम्मीदवार होने के निर्योग्य हो जाये। मेरा विचार है कि इन युक्तियों के कारण विधान के प्रारूपकों को यह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये और इसे मसौदे में समाविष्ट कर देना चाहिये, जिससे कि जो भी देश-द्रोह का अपराधी हो, अथवा विधान के उल्लंघन करने का अपराधी हो, उसे निर्योग्य घोषित किया जा सके।

मैं इसे परिषद् की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1109 शाब्दिक है और पेश नहीं हो सकता। संशोधन संख्या 1110 से 1112 सदृश आशय के हैं। इनमें से प्रथम पेश हो सकता है। यह डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) में और खण्ड 2 की व्याख्या में, 'परिलाभ के पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'लाभ के पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, इस संशोधन का अभिप्राय केवल मसौदे की भाषा को सुधारना है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1111 । क्या इस पर मत लिये जाने चाहियें?

***श्री एच.वी. कामत:** डॉ. अम्बेडकर रास्ता काट कर निकल गये हैं। अब इस संशोधन का प्रश्न नहीं उठता।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1112 ।

***श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): वह तो पहले ही हो चुका, श्रीमान्!

(संशोधन संख्या 1113 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1114, 1115 और 1116 शाब्दिक है, अत: वे पेश नहीं किये जा सकते।

संशोधन संख्या 1117, डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्न पदावली रख दी जाये:

'(a) he is the governor of any State for the time being specified in Part I of the first schedule or is a Minister either for India or for any such State; or' "

[(क) वह प्रथम सूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित किसी राज्य का शासक है अथवा भारत का या ऐसे किसी राज्य का मन्त्री है; अथवा]

इस संशोधन का उद्देश्य उस निर्योग्यता को दूर करना है, जो इस कारण उत्पन्न हो सकती है कि राज्य का गवर्नर (शासक) अथवा कोई मन्त्री ताज के अधीन लाभ के पद पर आसीन है। यह वांछनीय है कि राज्य के गवर्नर तथा केन्द्र एवं राज्यों के मन्त्री को निर्वाचन के लिये खड़ा होने की अनुमति होनी चाहिये और लाभ के पद पर आसीन होने का नियम उनके मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहिये।

(संशोधन संख्या 1118 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1119 से 1122 तक शाब्दिक है और पेश नहीं किये जा सकते।

(संशोधन संख्या 1123 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1124 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के खण्ड (ख) के आगे निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले, अपना पद त्याग कर देगा।'"

श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि प्रारूपकों का यह अभिप्राय नहीं हो सकता कि मन्त्री के पद पर आसीन व्यक्ति मन्त्री भी बना रहे और उम्मीदवार भी हो सके। यह एक ऐसी बात है जो मुझे साधारण बुद्धि की बात लगती है और इस कारण स्वीकार हो जानी चाहिये; किन्तु हां, जहां असाधारण बुद्धि का साम्राज्य होता है, वहां साधारण बुद्धि की पूछ नहीं होती। अत: मैं कहना चाहता हूं कि यह बहुत भयावह बात है कि एक मंत्री मन्त्रित्व पद पर भी आसीन रहे और उम्मीदवार भी हो जायें, और वह या उसके कार्यकर्त्ता और प्रचारक ऐसे उपायों का आश्रय लें जो किसी भी वैधानिक शासन की प्रणाली में निन्दनीय होते हैं। अत: मूल विधान द्वारा उसका निषेध हो जाना चाहिये।

इस जोखिम से बचने के लिये मैं विधान में ही यह प्रावधान रखना चाहता हूं कि किसी मन्त्री को, जो ऐसे किसी पद के लिये उम्मीदवार खड़ा होना चाहता हो, पहले अपना पद त्याग करना चाहिये और इस सम्मान-लाभ के लिये अन्य किसी साधारण नागरिक के समान ही खड़ा होना चाहिये। उसने जो कुछ प्रभाव जमा लिया है, जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्बन्ध आदि पहले ही स्थापित कर लिये हैं, वे तो रहेंगे ही, वह उनसे वंचित नहीं होगा। वे उसके लिये पूंजी के समान होंगे। किन्तु उस पर किंचित् भी ऐसा सन्देह नहीं होना चाहिये कि वह पदासीन होने के कारण निर्वाचित होने के लिये तथा बहुमत प्राप्त करने के लिये अपने पद का तथा अपनी प्रभावयुक्त स्थिति से लाभ उठा सकता है चाहे वास्तव में वह ऐसा करे ही नहीं। मैं फिर कहता हूं कि यह वैधानिक स्वतन्त्रता तथा देश के सुशासन की दृष्टि से बहुत गम्भीर बात है, अत: यह संशोधन बिना किसी विरोध के स्वीकृत हो जाना चाहिये। मैं इसे परिषद् में सविनय पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है। वह पांचवें सप्ताह की प्रथम सूची में 27वां है और पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1125 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(c) Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare

[प्रो. के.टी. शाह]

and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade which is in any way aided or supported by the Union Government; and all such right, title, share or interest of the President shall be bought up by the Government of India.' "

[(ग) जो व्यक्ति प्रधान चुना जायेगा, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा दायित्व को ग्रहण करने से पूर्व, किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने सारे अधिकार, उपाधि, अंश सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे अपने को अलग कर लेगा जो जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है और प्रधान के ऐसे समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित को भारत-सरकार खरीद लेगी।]

श्रीमान्, मुझे इस परिषद् के सम्मुख जितने संशोधन पेश करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैं इस संशोधन को उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता हूं। अब के बाद विभिन्न अनुच्छेदों पर विभिन्न संशोधनों के रूप में इस विषय की पुनरावृत्ति होगी। पर मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैंने भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में एक ही बात को भिन्न-भिन्न तरीकों से रखा है, केवल इसीलिये नहीं कि उस पर यह मौखिक आपत्ति की जा सकती है कि यह तो पहले ही हो चुका है, किन्तु इसका यह भी कारण है कि विभिन्न अनुच्छेदों में मेरा दृष्टिकोण तनिक भिन्न है। तदनुसार एक के अस्वीकृत होने पर भी, दूसरे का स्वीकृत होना आवश्यक तौर पर असम्भव नहीं हो जाता।

किन्तु, उन पर आपको तब विचार करना है जबकि अन्य संशोधन पेश किये जायें। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि इन संशोधनों में निहित सिद्धांत किसी राज्य की माननीय तथा आदर्श सरकार के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

श्रीमान्, आदर्शों की कोई कद्र मालूम नहीं होती। हां, उन्हें केवल सार्वजनिक मंचों से घोषित किया जाता है। सार्वजनिक मंचों से हम प्रतिदिन उन उच्च आदर्शों की दुहाई देते हैं जिनका अनुसरण करने का हम दावा करते हैं, और अपने मित्रों तथा प्रशंसकों को उनके अनुसरण के लिये कहते हैं, किन्तु हमारा सदा यही विचार होता है कि वह अन्य लोगों पर लागू होते हैं हम पर नहीं, और हमारी सदा यही भावना रहती है कि हमारा आचरण आलोचना से परे है। किन्तु मेरा

ख्याल है कि पूर्णतया संतों के राज्य में भी, ऐसा सुझाव रखना व्यर्थ नहीं है कि कम से कम राज्य का प्रमुख तो, सीज़र (Caesar) की पत्नी से भी अधिक मात्रा में, किसी भी संशय से परे होना चाहिये।

यदि उसकी कोई जायदाद है, यदि उसका कोई स्वार्थ है, यदि उसकी कोई सम्पत्ति है जिसके लिये वह अपनी नीति अथवा अपनी सरकार की नीति द्वारा, जिस पर कि वह कम से कम प्रभाव तो डाल ही सकता है, कोई लाभ प्राप्त कर सकता है, अथवा चाह सकता है, तो मेरा परिषद् से निवेदन है कि राज्य के प्रमुख के नाते वह तथा समस्त सरकार संदेह और निन्दा की पात्र बन सकती है, और ऐसा नहीं होने देना चाहिये।

श्रीमान्, इस परिषद् के बहुत से सदस्यों को, जिन्हें कि संसार के आधुनिक इतिहास में रुचि है, यह पता है कि नात्सी लोगों के शक्ति प्राप्त करने से पूर्व जर्मन रायक (Reich) के अत्यन्त प्रतिष्ठित प्रधान पर इस बात का भी प्रभाव पड़ा था कि प्रधान हिंडनबर्ग पूर्वी प्रसिया के जमींदारों को तथाकथित सहायता देने के लिये राजी हो गया, जिससे उसकी बदनामी हो गई, और जिससे कम से कम मेरे विचार में, नात्सी शक्ति की स्थापना हुई।

मुझे आशा है कि सब इस बात से सहमत होंगे कि जर्मनी के लिये यह अवांछनीय बात थी, और इसके परिणामों को लोग देख ही चुके हैं। अतः यह एक समुचित सम्मति है, कम से कम चेतावनी है, जिस पर चलना और अपने विधान में इसे कार्यान्वित करना हमारे लिये अच्छा होगा।

प्रधान को समस्त झंझटों से स्वतन्त्र होना चाहिये, सम्पूर्ण राज्य के हितों के अतिरिक्त उसका कोई हित नहीं होना चाहिये, उसे विधान में आभूषण के समान ही जो पद मिले उसके द्वारा अपने देश की यथाशक्ति सेवा करने की ही इच्छा होनी चाहिये और कोई अन्य प्रलोभन नहीं होना चाहिये। यह बात इतने उच्च महत्व की है कि मेरे विचार में हम उसके मार्ग में से प्रत्येक सम्भावित, प्रत्येक कल्पना में आने वाले प्रलोभन को हटाने में जितनी सख्ती करें और जितने निश्चयात्मक ढंग से काम लें उतना ही थोड़ा है। तदनुसार यह एक रचनात्मक, तथा सुनिश्चित आवश्यकता है कि प्रधान के अपने पद के प्रकार्यों को सम्भालने से पहले, उसके अपने पद पर आसीन होने से पहले उसे किसी सम्पत्ति, व्यवसाय अथवा व्यापार में अपने उपाधि, अधिकार अथवा हित की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये, जो कि प्रधान बनने से पहले उसके अधीन थे। इसके अतिरिक्त

[प्रो. के.टी. शाह]

उसे इनका परित्याग करना चाहिये, और सरकार को वह अधिकार ले लेना चाहिये अथवा उसे खरीद लेना चाहिये।

इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रावधान के होते हुये भी प्रधान पद पर आसीन व्यक्ति को प्रधान होने के कारण ही कोई दण्ड नहीं मिलता, कोई जुर्माना नहीं होता, वह निर्धन नहीं बनता। आर्थिक दृष्टिकोण से उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई कमी नहीं पड़ती। पर नैतिक दृष्टि से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जायेगी; यदि आपको नैतिकता का जरा भी विचार है, यदि आपका जरा भी यह आदर्श है कि आपके राज्य का प्रमुख सब प्रलोभनों से स्वतंत्र हो, आपके राज्य का प्रमुख सन्देह से भी परे हो, तो मैं आपसे कहता हूं कि आप सम्भवत: शिष्टाचार के नाते ही, मेरे इस संशोधन को अस्वीकार नहीं कर सकते।

इसके द्वारा मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उन आदर्शों पर सच्चे रहे जिन्हें आप प्रतिदिन घोषित करते हैं और फिर भी आप में से कम से कम कई तो अपने जीवन में प्रतिदिन उन्हें तोड़ते भी हैं। ऐसी अवस्था में मुझे इस परिषद् से अनुरोध करने में कुछ भी संकोच नहीं है कि मेरे बताये हुये कारणों से यह सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिये, जिससे कोई ऐसा न कह सके कि हम दूसरों को बहकाने के लिये ही आदर्शों का उपदेश करते हैं, ऐसे सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं, जिनमें हमें स्वयं विश्वास नहीं है। इस संशोधन के पेश करने पर मुझे कोई खेद नहीं है, और मुझे विश्वास है कि इस संशोधन को बिना विरोध के स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधनों पर मत लेना आरम्भ करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** हम बहस करना चाहते हैं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** यदि आप इस पर जोर देते हैं तो मैं इसकी अनुमति देने के लिये तैयार हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1108 के प्रथम भाग का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं, जो उन्होंने अभी कुछ देर पूर्व पेश किया था। संशोधन संख्या 1108 के प्रथम भाग में भारतीय जनतंत्र के प्रधान के पद के लिये कुछ योग्यताओं का उल्लेख है। अन्तिम अधिवेशन के अन्तिम दिन हमारे विश्राम के

लिये स्थगित होने से पहले जब मैंने संशोधन 1100 पेश किया था, जिसमें प्रधान के पद के लिये कुछ निर्योग्यताओं का उल्लेख था, जैसे कि यदि उस पर विधान के उल्लंघन का आरोप लगाया गया हो तो पुनः प्रधान चुने जाने के लिये यह बात बाधास्वरूप बन जायेगी। जब मैंने वह संशोधन पेश किया था, तब डॉक्टर अम्बेडकर ने परिषद् को बताया था कि वह संशोधन समुचित स्थान पर नहीं रखा गया है, बल्कि बाद में कभी पेश होना चाहिये, अर्थात् अनुच्छेद 47 के समय पेश होना चाहिये जिसमें कि प्रधान-पद के लिये कुछ योग्यताओं और निर्योग्यताओं का वर्णन है। मुझे हर्ष है कि मेरे मित्र और विद्वान् प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन में विधान के उल्लंघन और पारिणामिक दोषारोपण के विषय में यह विशेष प्रावधान रखा है। मैं समझता हूं कि विधान के अनुच्छेद 83 में यह प्रावधान है—अनुच्छेद 83 इस प्रकार है:

"कोई व्यक्ति संसद् के किसी आगार का सदस्य चुने जाने के लिये और सदस्य रहने के लिये निर्योग्य होगा.....

(ङ) यदि वह संसद् निर्मित किसी विधि के द्वारा अथवा अधीन इस प्रकार निर्योग्य कर दिया गया है।"

यह कल्पना की जा सकती है कि स्वतन्त्र भारत की भावी संसद् इस आशय के कुछ प्रावधान बनायेगी कि कौन योग्य होगा और कौन निर्योग्य होगा। किन्तु यह तो इतना अधिक महत्वपूर्ण विषय है कि इसे संसद् के निर्णय पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह तो मामले के मूल तक जाता है, देश-द्रोह के कारण अथवा राज्य के विरुद्ध अपराध करने पर अथवा विधान के उल्लंघन के फलस्वरूप प्राभियोग के कारण निर्योग्यता—यह सम्भव है कि जब हम अनुच्छेद 83 को लें तब हम इनमें से कुछ अथवा इन सब निर्योग्यताओं को संसद् का सदस्य बनने के लिये निर्योग्यताओं में सम्मिलित कर सकते हैं, किन्तु इस विषय में हमें स्पष्ट होना चाहिये कि हम इन बातों को भावी संसद् के निर्णय पर छोड़ना चाहते हैं अथवा विधान में रखना चाहते हैं। अतः मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि जब वे इसका उत्तर देने उठें तब कृपया हमें बतायें कि वे इन निर्योग्यताओं को स्पष्टतः तथा प्रत्यक्ष—कर—कंगन के समान प्रत्यक्ष—निस्संदेह अनुच्छेद 83 में रखेंगे अथवा भावी भारत की संसद् पर छोड़ देंगे। श्रीमान्, प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 1108 के विषय में इतना ही कहना है।

उनके द्वारा पेश किये हुये संशोधन संख्या 1125 के विषय में मेरा ऐसा विचार है कि इस संशोधन में सन्निहित सिद्धान्त बहुत अच्छा है। मैं इस सिद्धान्त

[श्री एच.वी. कामत]

का निस्संदेह स्वागत करता हूं कि भारतीय संघ का प्रधान निर्वाचित होने पर किसी व्यक्ति को संसद् के सामने, अथवा जनता और राष्ट्र के समक्ष तो घोषित कर देना चाहिये कि देश के व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में उसका कितना हित है अथवा अंश है। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो विधान-मण्डल के गत बजट-अधिवेशन में इस सभा ने फैक्ट्री-एक्ट स्वीकार किया था, और उस कानून में एक खण्ड अथवा धारा इस आशय की भी थी कि किसी निर्मात्री (फैक्ट्री) के चिकित्साधिकारी को भी, अपने पद पर नियुक्त होने पर, संचालक-मण्डल अथवा प्रबन्धकों अथवा सरकार के समक्ष यह घोषित करना होगा कि उस निर्माणी में अथवा उस व्यवसाय से सम्बद्ध किसी प्रतिष्ठान में उसका क्या हित, अंश अथवा सदृश हित हैं। यदि हम किसी निर्माणी के छोटे से अधिकारी के विषय में ऐसी शर्त लगाना चाहते हैं तो यह तर्कसंगत दिखाई देता है कि भारतीय संघ के प्रधान को राष्ट्र और संसद् के समक्ष घोषणा करनी चाहिये कि देश के व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में उनका क्या हित है। मैं यह समझता हूं और स्वीकार करता हूं कि प्रधान को बहुत अधिक शक्ति नहीं दी गई है। किन्तु कोई इन्कार नहीं कर सकता कि प्रधान को बहुत प्रभाव का पद दिया गया है और यदि वह उचित अथवा ठीक प्रकार का व्यक्ति नहीं है तो वह इस प्रभाव का दुरुपयोग कर सकता है। हम अभी-अभी कांग्रेस के जयपुर-अधिवेशन से आये हैं—कम से कम कुछ तो आये ही हैं—जहां कि कुछ दिन पहले ही कांग्रेस ने सार्वजनिक व्यवहार के विषय में प्रस्ताव पारित किया था। क्या श्रीमान् हम गम्भीरतापूर्वक उस प्रस्ताव को कार्यान्वित करना चाहते हैं अथवा नहीं? चाहे जयपुर-अधिवेशन में पण्डित नेहरू के कहने पर कुछ शब्द हटा दिये गये थे, किन्तु फिर भी वह ऊपर से नीचे तक सब कांग्रेसजनों पर लागू होता है। और यदि वह सब कांग्रेसजनों पर लागू होता है तो हम जो सार्वजनिक व्यवहार की संहिता बना रहे हैं वह सब पर लागू होनी चाहिये चाहे वे कांग्रेस-जन हों अथवा नहीं, वह सब पर लागू होनी चाहिये जो कि इस देश में किसी पद पर आसीन हो, चाहे वह पद छोटा हो चाहे बड़ा। श्रीमान्, प्रधान का पद, प्रधान की स्थिति निस्संदेह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यदि सार्वजनिक व्यवहार के विषय में उस प्रस्ताव पर हम सच्चे हैं तो मैं इस परिषद् के समक्ष अवश्य अनुरोध करूंगा कि भारतीय संघ के प्रधान को अपने पद पर प्रतिष्ठित होने से पहले हमें संसद् को यह अवश्य बताना चाहिये कि देश के किसी व्यापार अथवा अन्य व्यवसाय में उसका कितना हित अथवा अंश है, अन्यथा यह हो सकता है कि किसी अवसर

पर, किसी प्रलोभन-युक्त मौके पर, वह अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर ले और किसी व्यापार में सहायता दे दे जिसमें कि उसका अधिक हित हो।

श्रीमान्, मैं प्रोफेसर के.टी. शाह जितना आगे बढ़कर यह नहीं करना चाहता कि वे सब अधिकार तथा हित भारत-सरकार द्वारा खरीद लिये जाने चाहियें। मैं यह सुझाव रखना चाहता हूं कि एक बार जब वह यह घोषित कर दे कि किसी व्यापार अथवा व्यवसाय विशेष में उसका कितना हित अथवा अंश है, तब वह मामला संसद् के निर्णयार्थ छोड़ दिया जाना चाहिये कि उन अधिकारों अथवा हितों का क्या करना चाहिये, उनका क्या प्रबन्ध होना चाहिये अथवा अन्त होना चाहिये। यदि इतना ही मान लिया जाये तो प्रधान को अपने हितों की घोषणा करनी होगी तथा उनकी स्थिति बतानी होगी, और तब हम यह बात भारत की संसद् पर छोड़ सकते हैं कि इस मामले को संभाले और निश्चय करे कि उस विषय में वह क्या करेगी।

***उपाध्यक्षः** डॉक्टर अम्बेडकर!

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मुझे.....

***उपाध्यक्षः** मैं डॉक्टर अम्बेडकर का नाम बोल चुका हूं, मुझे खेद है। पर क्या आपका कोई संशोधन है?

श्री श्यामानन्दन सहायः नहीं, मेरा कोई संशोधन नहीं है, किन्तु....

***उपाध्यक्षः** यदि आप मेरे सामने आ जाते तो आप मुझे दिखाई दे जाते, क्योंकि उस दिशा में बुरा चौंधा पड़ता है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): किन्तु श्रीमान्, हमने अभी तक इस अनुच्छेद पर पर्याप्त वाद-विवाद नहीं किया है। केवल एक सदस्य बोले हैं।

***माननीय डॉक्टर बी. आर. अम्बेडकरः** यदि वे और वाद-विवाद चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ने कृपा करके कह दिया है कि वे इस बात का ख्याल नहीं करते यदि अन्य सदस्य भी बोलें। क्या श्री श्यामानन्दन सहाय कृपया ध्वनि-यंत्र पर आयेंगे?

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्.....

***उपाध्यक्ष:** श्री सिधवा सदा अन्त में ही बोलेंगे। मैं उन्हें अन्त में बोलने का अवसर दूंगा।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** प्रोफेसर शाह का कौन-सा संशोधन?

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** संशोधन संख्या 1124, जो इस प्रकार है:

"पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले अपना पद-त्याग कर देगा।"

श्रीमान्, ऐसा सदा नहीं होता कि मुझे प्रोफेसर के.टी. शाह के साथ सहमत होने का सौभाग्य प्राप्त हो, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन विशेष में, जो कि उन्होंने पेश किया है, उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है और मैं नहीं समझता कि ऐसे मामले में, चाहे और कहीं और कुछ निर्णय हो चुका हो, पर इस परिषद् को दृढ़ होना चाहिये क्योंकि प्रोफेसर के. टी. शाह अपने संशोधन में ऐसा सिद्धान्त रखना चाहते हैं जो समस्त संसार में स्वीकृत हो चुका है (नहीं, नहीं, का शोर)। हां, हां। प्रत्येक को अपनी सूचना तथा ज्ञान यहां पेश करने का अधिकार है। विद्यमान कांग्रेस समितियों में भी जो व्यक्ति प्रान्तीय अथवा जिला कांग्रेस समिति के प्रधान-पद के लिये खड़ा होना चाहता है, उसे केवल मन्त्री-पद से ही नहीं वरन् विधान-मण्डल के सदस्य के पद से भी त्यागपत्र देना होता है।

***पण्डित बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): नहीं, नहीं, आप नहीं जानते। इस प्रकार बातों को व्यापक रूप मत दीजिये।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मैं ऐसे प्रांत से आया हूं जहां यह नियम लागू है; यह बहुत अच्छा नियम है। यदि अन्य प्रान्त इसका अनुसरण नहीं कर रहे हैं तो इससे उन पर ही विपत्ति पड़ेगी।

***उपाध्यक्ष:** आपको इन बाधाओं का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मैं आपकी सम्मति मान लूंगा, श्रीमान्! यह बहुत अच्छी सम्पति है।

अब स्थिति यह है कि हमारे विधान में प्रधान की जो स्थिति होगी, वह बहुत उच्च तथा महत्त्वपूर्ण है। और यदि एक व्यक्ति, जो पहले से ही मन्त्री है तथा उस पद पर कार्य कर रहा है। प्रधान पद के लिये खड़ा हो, तो यह अत्यन्त निर्बुद्धि की तथा भयंकर बात होगी। चाहे वह मनुष्य स्वयं ऐसा नहीं चाहता हो, पर यह बात तो होती ही है कि शक्ति-प्राप्त मन्त्री को अन्य व्यक्ति की उपेक्षा सम्भवतया, प्रत्यक्ष रूपेण तथा अप्रत्यक्ष रूपेण, अधिक समर्थन प्राप्त होगा। अतएव यह तो केवल उचित तथा न्यायसंगत ही होगा कि प्रधान का निर्वाचन इस प्रकार किया जाये कि किसी व्यक्ति को अपने विरोधी की अपेक्षा जरा भी अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त नहीं हो।

इस समय देश में जो स्थिति विद्यमान है उस पर विचार करते हुये यह आशा की जाती है कि इस उच्च स्थिति पर आसीन जो व्यक्ति हैं उनके विषय में कुछ कठिनाई सम्भवत: नहीं होगी। उनका नैतिकता का स्तर भी बहुत उच्च है, और मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि प्रधान-पद के लिये खड़े होने से पूर्व वे स्वयं त्याग-पत्र दे देंगे। किन्तु हम इस विधान में ऐसा नियम रख रहे हैं कि यदि कोई मन्त्री निर्वाचन में उम्मीदवार खड़ा होना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है और मन्त्री के पद पर सारे समय आसीन रहते हुये ही सारा चुनाव लड़ सकता है। श्रीमान्, मेरे विचार में ऐसा करना तो ठीक नहीं होगा, और जिन कठिनाइयों की कल्पना की जा सकती है, उन पर विचार करते हुये, यह तो उचित ही होगा कि ऐसा प्रावधान रख दिया जाये कि मन्त्री-पद पर आसीन कोई भी व्यक्ति तब तक उम्मीदवार खड़ा नहीं हो सकता जब तक कि वह उस पद पर रहे। उसे सबसे पहले त्याग-पत्र देने के लिये कहा जाना चाहिये और तब वह दूसरों की तरह ही प्रधान-पद के लिये खड़ा हो सकता है तथा चुनाव लड़ सकता है।

श्री अलगूराय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने पेश किये हैं और खासकर अन्तिम संशोधन उनका जो 1125 है, मैं उसका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। जैसे अब से कई बार पहले कहा जा चुका है प्रोफेसर के.टी. शाह महोदय की धारणा जिस प्रकार के विधान की है, वह या तो पूरी तौर पर स्वीकार किया जा सकता है या नहीं स्वीकार किया जा सकता। जो मौजूदा विधान है और जिस दृष्टि से लिखा गया है, उसमें समय-समय पर प्रोफेसर के.टी. शाह के ऐसे संशोधन आ

[श्री अलगूराय शास्त्री]

जाया करते हैं। वह संशोधन यदि किसी एक जगह पर भी स्वीकार हो जायें, तो पूरा ढांचा एक दूसरे तरह का हो जाता है। इस संशोधन में उनका ख्याल यह है कि हमारा प्रेज़ीडेण्ट, रिपब्लिक का प्रेज़ीडेण्ट, ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसका कोई आर्थिक स्वार्थ कहीं न हो। आर्थिक स्वार्थ कहीं न हो, जहां वह यह कहते हैं, वहां उन्होंने अपने व्याख्यान में यह कहा है कि अगर उसके किसी प्रोपर्टी में शेयर्स हों, हिस्से हों तो सरकार उनको खरीद ले, ताकि वह गरीब न हो जाये। तो व्यक्तिगत सम्पत्ति का आइडिया उनके दिमाग में है, और सम्पत्ति तो वह रखने दे सकते हैं। वह यह नहीं कहते हैं कि प्रेज़ीडेण्ट एक ऐसा व्यक्ति हो जिसकी सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति मिट जाये, इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को तो वह मिटाना नहीं चाहते। लेकिन प्रेज़ीडेण्ट हो जाने के बाद उसके लिये वह इस बात की आवश्यकता समझते हैं कि वह अपने सारे आर्थिक स्वार्थों को बेच डाले, अथवा सरकार उसको खरीद ले और वह साफ तौर से एलान कर दे कि उसका कोई स्वार्थ आर्थिक कहीं नहीं है। यह दोनों विचार स्वयं कन्टरेडिक्टरी हैं (विरोधी हैं)। एक तरफ तो व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद आ जाता है जब हम उसको अपनी जायदाद बेच कर मनीड वेल्थ (रुपये) की सम्पत्ति रखने की इजाजत देते हैं, क्योंकि उसके पापर (दरिद्र) हो जाने का खतरा शाह महोदय के दिमाग में है। मैं समझता हूं कि प्लेटो का आइडियलिस्टक यूटोपियन कम्युनिज्म उनके सामने है जिसमें शासक ऐसे हों, जिनकी अपनी कोई सम्पत्ति न हो, स्वार्थरहित हों, धनहीन हों। उनका एक कौमन किचन हो, वह एक आइडियल लाइफ लीड करते हों, एक साधु-संन्यासी की तरह से हों, उनका कोई आर्थिक स्वार्थ न हो, तब तो हम कान्स्टीट्यूशन में ही यह कह सकते हैं कि वह आदमी एलीजिबल नहीं होगा, प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये, जिसके पास कोई सम्पत्ति हो, जिसके कहीं शेयर्स हों, या जिसकी कोई जायदाद हो। जो शर्तें हमने प्रेजीडेण्टशिप के लिये खड़े होने पर लगाई हैं, उन्हीं शर्तों के साथ एक ऐसी शर्त लगा दें जिससे ऐसा व्यक्ति प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये खड़ा न होने पाये जिसके नाम कोई जायदाद हो, या जिसका बैंकिंग कम्पनी में कोई किसी जगह हिस्सा हो। हम कह सकते हैं कि ऐसा आदमी प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये एलेजिबल नहीं होगा। प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का अभिप्राय यह है कि जब प्रेज़ीडेण्ट हो जाय तो उसका कहीं शेयर न रहे, लेकिन इससे पहले वह शेयर रख सकता है। मैं समझता हूं कि आईडिया तो उनका यह होना चाहिये कि व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को हम मिटा दें और सारी सम्पत्ति सोस्लाइज्ड कर दी जाये, किसी तरह की कोई सम्पत्ति किसी इन्डिवीजुएल की न रहे। लेकिन इस कान्स्टीट्यूशन में जो प्रोविजन्स हम पहले

पास कर चुके हैं। उसमें हमने व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को स्थान दिया है और उन चीजों को मानते हैं। यहां एक व्यक्ति को इस तरह से विवश किया जाये कि वह एक तरह का डिक्लेरेशन दे दे और अपने तमाम टाइटिल्स को छोड़ दे और इस तरह वह औनेस्ट हो जायेगा, यह मुझे आवश्यक नहीं प्रतीत होता। हां, मैं उस समाज की कल्पना करता हूं जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद घटता जाये और चीजें सोस्लाइज्ड ओनरशिप में आ जायें, वह समाज मुझको अच्छा लगता है। हम प्लेटो के आइडियल की तरफ नहीं जा सकते, एक ऐसे कम्युनिज़्म की तरफ नहीं जा सकते हैं जिसमें एक होटल की जिन्दगी हमारी बन जाती है, ऐसा समाज टिकाऊ नहीं होता, वह नन्हें-नन्हें कम्यूनों में सम्भव है चल सकता हो परन्तु एक छोटे से म्युनिसिपल बोर्ड का चलाना भी उस तरह दुष्कर है। मैंने देखा है कि छोटी-छोटी जगहों में भी आर्थिक प्रश्न आ जाता है। साधुओं के मठों में भी गद्दी के प्रश्न पर झगड़े उठ खड़े होते हैं। तो जो रिएल्टी है, (वस्तुस्थिति और वास्तविकता है) उसको हमें सामने रखना चाहिये और इस निगाह से यह प्रतिबन्ध लगाना गैरजरूरी है इस कारण मैं शाह महोदय के इस संशोधन का विरोध करता हूं। शाह महोदय का दूसरा संशोधन भी स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसमें उन्होंने कहा है कि यदि कोई मिनिस्टर प्रेज़ीडेण्ट के लिये खड़ा हो तो वह मिनिस्टर पद से पहले त्याग-पत्र दे दे। मैं समझता हूं कि अगर कोई शख्स जो कि मिनिस्टर है प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये खड़ा होता है तो वह अपने अधिकारों से इतने लोगों को खरीद नहीं सकता, दबा नहीं सकता। लोग जनता अथवा प्रेज़ीडेण्ट का वोट देने वाले ऐसी भूल में आने वाले नहीं हैं कि कोई उन लोगों को कोहर्स करके वोट खरीद लें। यह संशोधन भी गैरज़रूरी मालूम होता है, इस वास्ते मैं यह मुनासिब समझता हूं कि यह रिजेक्ट हो जाना चाहिये और जिस रूप में यह कान्स्टीट्यूशन आया है, उसी रूप में इसको स्वीकार कर लेना चाहिये। (*बाधा*)

***उपाध्यक्षः** अनुभवी संसद्-विशारदों के लिये किसी वक्ता की वक्तृता में इस प्रकार बाधा डालना उचित नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं और वास्तव में समस्त परिषद् आपकी तथा, मैं कहना चाहता हूं, माननीय डॉक्टर अम्बेडकर की बहुत कृतज्ञ है कि हमें बोलने की अनुमति दी जाती है। हम आपकी शक्तियों को जानते हैं। आप जब भी चाहें हमें रोक सकते हैं। किन्तु मैं आपसे सदा निवेदन करूंगा कि आप इस अवस्था पर ही बोलने दें क्योंकि हम अब प्रथम बार और अन्तिम बार समस्त भारत के लिये विधान बना रहे हैं।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

सरकारी तौर पर 'मुंह बन्द करना' इन शब्दों का प्रयोग करने पर आप मुझे क्षमा करेंगे। किन्तु हमारा मुंह बन्द मत करिये। हमें बोलने दीजिये। विधान एक वर्ष में नहीं बनेगा, जैसे कि भारत सरकार आशा करती है। वह गलती पर है। कोई बात नहीं यदि वह दो-तीन वर्ष में समाप्त हो, किन्तु हमें बोलने का समय दीजिये।

संशोधन के बारे में मैं कहना चाहता हूं कि जहां तक मैं समझा हूं, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का यह आशय है कि किसी व्यक्ति को, जो कि भारतीय गणराज्य के प्रधान-पद के लिये खड़ा होना चाहे, यदि वह मन्त्री है तो अपना पद त्यागना चाहिये और यदि वह विधान-मण्डल का सदस्य है तो अपना स्थान त्यागना चाहिये। मेरे बिहार प्रान्त के माननीय एक सदस्य अभी बोल चुके हैं और उन्होंने कहा है कि उनके प्रान्त में यह कानून है कि यदि विधान-मण्डल का कोई सदस्य प्रान्तीय कांग्रेस समिति का प्रधान बनना चाहे तो उसे अपना पद त्यागना होता है। इस पर बलपूर्वक विरोध हुआ है। मैं विरोधियों से पूर्णतः सहमत हूं कि ऐसा कानून कोई नहीं है। हम यहां देखते हैं कि कांग्रेस के गत प्रधान श्री कृपलानी इस परिषद् के सदस्य भी थे और औपनिवेशिक संसद् के भी सदस्य थे। यहां हम देखते हैं कि युक्तप्रान्तीय धारा सभा के माननीय अध्यक्ष इस परिषद् के सदस्य हैं। बिहार में ऐसी बात नहीं है। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने कार्य आरम्भ किया तभी से इस परिषद् के अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद कई वर्षों तक प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रधान थे। यह दुर्भाग्य है कि उन्हें हमारा प्रान्त छोड़ कर दिल्ली आना पड़ गया। जब वे दिल्ली आ गये, और बिहार छोड़ दिया, तब किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधान चुन लिया गया जो कि विधान-मण्डल के सदस्य नहीं थे और उनका देहान्त हो गया। तब हमने प्रान्तीय विधान-मण्डल के सदस्य को प्रधान चुन लिया और उसे विधान-मण्डल की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ा। हम चाहते थे कि वे त्यागपत्र दें और उन्होंने दे दिया। बाद में प्रान्तीय विधान-मण्डल का दूसरा सदस्य प्रधान चुना गया और उसे भी सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ा। अतः बिहार में हमारे यहां सब परिपाटी है, यद्यपि कानून अथवा नियम नहीं है, कि जब विधान-मण्डल का कोई सदस्य प्रधान बनना चाहे, तब उसे चुनाव के लिये खड़ा होने से पहले त्याग-पत्र देना होगा। यह बहुत अच्छी और स्वस्थ परिपाटी है। आखिर भारतीय गण-राज्य का प्रथम प्रधान इस देश का अग्रणी सज्जन होगा और संसार के किसी भी नरेश से उसकी तुलना की जा सकती है। हम चाहते हैं कि प्रधान बनने से

पहले उसे किसी विधान-मण्डल से सब सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। प्रधान चुने जाने से पहले किसी मन्त्री को—चाहे वह केन्द्र का अथवा प्रान्त का मन्त्री हो—मन्त्री नहीं रहना चाहिये; उसे साधारण मनुष्य की तरह किसी विधान-मण्डल का सदस्य न रहते हुये, चुनाव में खड़ा होना चाहिये और चुना जाना चाहिये। लोग यही चाहते हैं। यह बहुत साधारण संशोधन है और परिषद् को तथा डॉक्टर अम्बेडकर को इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं परिषद् से केवल यही निवेदन करना चाहता हूं और श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे बोलने की अनुमति दी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधनों में से मैं किसी को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रोफेसर के.टी. शाह ने तीन संशोधन पेश किये हैं। एक तो प्रधान-पद के लिये मन्त्री के उम्मीदवार खड़ा होने के विषय में है और शेष दो प्रधान के विषय में हैं। तीनों संशोधनों पर उनकी वक्तृताओं के उत्तर में अपने कथन को भी मैं दो भागों में विभाजित करना चाहता हूं। प्रथम भाग में मैं उनके मन्त्री-सम्बन्धी संशोधन को लूंगा।

प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति मन्त्री-पद पर हो और चुनाव लड़ना चाहता हो तो पहली शर्त यह होनी चाहिये कि वह मन्त्री-पद से त्यागपत्र दे दे। दूसरे शब्दों में मन्त्री-पद निर्वाचन के लिये निर्योग्यतास्वरूप होगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन पर काफी ध्यान नहीं दिया है। पहली बात यह है कि यदि एक मन्त्री त्यागपत्र दे देता है तो यह संशोधन अनावश्यक है। दूसरी बात, जिस पर प्रोफेसर शाह ने विचार नहीं किया है और जो मुझे बहुत गम्भीर दिखती है वह यह है, फर्ज किया हम उनका संशोधन मान लेते हैं कि एक मन्त्री को प्रधान-पद के लिये खड़ा होने से पहले त्यागपत्र दे देना चाहिये, तो यह सर्वथा स्पष्ट है कि संसद् के भंग होने तथा नई संसद् के समवेत् होने के मध्यवर्ती समय में प्रशासन का कार्य चलाने के लिये कोई मन्त्री नहीं होंगे। और हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है। पुरानी संसद के भंग होने और नई संसद् के समवेत् होने के मध्यवर्ती काल में प्रशासन का क्या होगा? क्या हम सारा प्रशासन नौकरशाही को अथवा प्रशासकीय विभागों के अधिकारियों को सौंप देंगे जिससे कि नई संसद् के निर्वाचन तक वे काम चलायें? अथवा क्या किसी प्रकार का ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है, जिससे हम अस्थायी मन्त्रियों का एक दल खोज लें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जो कि इन दो-तीन मासों के अल्पकाल के लिये शासन-भार संभाल लें और इस प्रकार स्वयं चुनाव में खड़े होने तथा पूरे समय के लिये मन्त्री बनने का अवसर खो दें? मुझे दिखाई देता है कि यदि प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार कर लिया जायेगा, तो इससे देश के शासन में पूर्णतः प्रशासनिक अराजकता उत्पन्न हो जायेगी, इस कारण मैं निवेदन करता हूं.....

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): इसमें सब मन्त्रियों का प्रसंग नहीं है इसमें उप-मन्त्री का प्रसंग है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): और उप-मन्त्री का भी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** फर्ज किया प्रत्येक मन्त्री चुनाव करना चाहता है, अतः प्रत्येक मन्त्री को त्यागपत्र देना होगा।

प्रोफेसर के.टी. शाह ने इस बात की चर्चा की है कि मन्त्री-गण प्रायः निर्वाचन में गड़बड़ करते हैं, अथवा प्रशासन पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं अथवा उलट-पुलट कर सकते हैं। हां, किसी हद तक यह ठीक है। किन्तु मन्त्री-गण निर्वाचन पर जो प्रभाव डालते हैं अथवा डाल सकते हैं उसे हटाने के लिये ही विधान के मसौदे में कुछ अनुच्छेदों के अन्तर्गत (अनुच्छेद 289 से 292 के अधीन) एक विशेष व्यवस्था प्रावहित की है जो केन्द्र तथा प्रान्तों में निर्वाचन-आयोगों के अधीन होगी। वे आयोग संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डलों के निर्वाचनों को संभालेंगे। वे निर्वाचनों का पूर्णतः अधीक्षण, संचालन तथा नियंत्रण करेंगे, जिससे कि निर्वाचनों पर मन्त्रियों के प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न किया गया है, अतः प्रोफेसर के.टी. शाह को जो आशंका है वह व्यर्थ है। इन कारणों से मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

प्रधान के सम्बन्ध में उन्होंने जो संशोधन रखे हैं, अब मैं उन्हें लेता हूं। उनके पहले संशोधन संख्या 1108 में कुछ निर्योग्यताओं का आयोजन है जैसे कि देशद्रोह के लिये दण्डित होना, राज्य के विरुद्ध अपराध अथवा विधान का उल्लंघन आदि। हमने इन निर्योग्यताओं को इस अनुच्छेद विशेष में स्पष्टतः क्यों नहीं रखा है, इसका कारण इससे स्पष्ट हो जायेगा; यदि सदस्य ध्यान दें कि हमने अन्य प्रावधान रखे हैं जिनका कि वही उद्देश्य है जो कि प्रोफेसर के.टी. शाह के दिमाग में है। इस सम्बन्ध में मैं परिषद् का ध्यान अनुच्छेद 48 के उप-खण्ड (ग) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अनुसार "प्रधान ऐसा व्यक्ति होगा

जो लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो"। इधर लोक-सभा के सदस्य चुने जाने की योग्यताओं का अनुच्छेद 83 में उल्लेख है। अनुच्छेद 83 के खण्ड (ङ) में यह बात संसद् पर छोड़ दी गई है कि वह कोई और निर्योग्यतायें भी जोड़ सकती है, जिन्हें जोड़ना संसद् आवश्यक अथवा वांछनीय समझे। अतः यह सम्भव है कि संसद् अनुच्छेद 83 के उपखण्ड (ङ) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय यह अभीष्ट समझे कि निर्योग्यताओं की सूची में कुछ ऐसी बातें भी रख दे, जिन्हें प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन में बताया है, (उसे अनुच्छेद 83 में पहले से ही उल्लिखित निर्योग्यताओं में और निर्योग्यताएं जोड़ देने की शक्ति है?) अतः मेरा निवेदन है कि यद्यपि इस खण्ड-विशेष में प्रोफेसर शाह द्वार कथित निर्योग्यताओं का प्रसंग नहीं है, तदपि संसद् के लिये यह सर्वथा सम्भव है और उसे अधिकार है कि वह अनुच्छेद 83 के उप-खण्ड (ङ) में कोई कानून बना कर उन्हें जोड़ दें।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं एक बात स्पष्ट कराना चाहता हूं। उपाध्यक्ष महोदय, यदि 'विकृत मस्तिष्क' तथा 'अनुन्मुक्त दिवालिया' जैसी बातों को अनुच्छेद में रखने के योग्य महत्व की समझा जाता है, तो इसमें क्या तर्क है कि इस अधिक मूलभूत और आधारभूत बात को संसद् पर छोड़ दिया जाये तथा इसे विधान में नहीं रखा जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं जानता। यह तो केवल तर्क का विषय है। यह कहना सर्वथा सम्भव है कि किसी निर्योग्यता को यहां रखा जाना चाहिये। यह कहना सर्वथा सम्भव है कि समस्त आवश्यक बातें यहां रखी जानी चाहियें तथा शेष संसद् पर छोड़ दी जानी चाहियें। मुझे इसमें कोई वैपरीत्य दिखाई नहीं देता।

अब मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के अन्तिम संशोधन संख्या 1125 को लेता हूं। उन्होंने जो भाषा प्रयोग की है, मेरे विचार में उस पर ध्यान से विचार करना अपेक्षित है। प्रोफेसर तो यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे प्रधान बनना हो, अपना पद संभालने से पहले, किसी व्यापार अथवा व्यवसाय में, जिसका कि सरकार संचालन कर रही हो अथवा जिसे सरकार स्वयं अथवा किसी के द्वारा चल रही हो, अपने हित, अधिकार, स्वामित्व आदि के परित्याग कर देना चाहिये, और दूसरी बात सरकार को वह हित प्रधान से खरीद लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में मेरे मन में सबसे पहले तो यही बात आती है कि अब तक मैंने जितनी चीजें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

देखी हैं उनमें यह बहुत ही नई बात है। मुझे स्मरण नहीं है कि संसार भर में कहीं कोई भी ऐसा विधान हो जिसमें कि ऐसी शर्त हो। मेरे विचार में यदि ऐसी कोई शर्त अपेक्षित थी तो वह संयुक्त राज्य (अमरीका) के विधान में थी जहां कि प्रधान की प्रशासनात्मक निर्देशन तथा नियंत्रण का अवसर प्राप्त है, और इस कारण वहां वैयक्तिक लाभ उठाने के अत्यधिक अवसर हैं। और फिर भी संयुक्त राज्य का विधान ऐसी शर्त के विषय में सर्वथा चुप है। निस्संदेह प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपना संशोधन इसलिये दिया है कि वे इसे अपने पहले सिद्धान्त के परिणामस्वरूप संशोधन समझते हैं, जो कि उन्होंने इस संशोधन के रूप में पेश किया था कि प्रधान की वही स्थिति होनी चाहिये जो कि संयुक्त राज्य के प्रधान की है। किन्तु हमारा विधान संयुक्त राज्य के प्रधान को दी हुई स्थिति से पूर्णतः भिन्न बन गया है। जैसा कि हमने बार-बार कहा है, हमारा प्रधान तो केवल नाममात्र का प्रतीक ही होगा। उसे स्वविवेक के अधिकार नहीं होंगे; उसे प्रशासन की कोई शक्तियां नहीं होंगी। अतः जहां तक हमारे प्रधान का सम्बन्ध है, यह प्रावधान सर्वथा अनावश्यक है। यदि यह अपेक्षित हो भी तो प्रधानमन्त्री तथा राज्य के अन्य मन्त्रियों के विषय में होना चाहिये, क्योंकि राज्य के प्रशासन का पूर्ण नियंत्रण उन्हीं के हाथ में होता है। यदि भारत-सरकार के अधीन किसी व्यक्ति को स्वलाभ करने का अवसर है तो प्रधानमन्त्री को है अथवा राज्य के मन्त्रियों को है और ऐसा प्रावधान उन पर उनकी पदावधि में लगाया जाना चाहिये था, प्रधान पर नहीं।

तीसरा प्रश्न यह उठता है—मेरे विचार में यह एक ठोस प्रश्न है। फर्ज किया हम ऐसी कोई शर्त लगा देते हैं; तो क्या वर्तमान स्थिति में ऐसा उम्मीदवार मिलना संभव है जो प्रधान पद के लिये खड़ा होगा और प्रोफेसर शाह द्वारा रखी गई शर्तों को मानेगा। मुझे बहुत संदेह है कि यदि ऐसी शर्तें रख दी जायें तो प्रोफेसर शाह भी प्रधान पद के लिये खड़े होंगे या नहीं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** वक्ताओं के बीच में बाधा डालने का मेरा जरा भी स्वभाव नहीं है। किन्तु क्या मैं उन्हें पूर्ण आश्वासन दे सकता हूं कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, उन्हें विश्वास रखना चाहिये कि इन शर्तों की सर्वथा पूर्ति होगी। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे प्रसन्नता है। किन्तु यह देश इस कल्पना पर ही काम नहीं चला सकता कि प्रधान पद के लिये केवल प्रोफेसर

शाह ही एक उम्मीदवार होंगे। (*हंसी*) बहुत से उम्मीदवार होने में ही भलाई है। अत: हमें विचार करना है कि आया व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस पद-विशेष के लिये खड़े होने वाले हमारे पास काफी उम्मीदवार होने चाहियें। और मुझे किंचित् भी संदेह नहीं है कि यह संशोधन बहुत सुन्दर होने पर भी इस संशोधन को स्वीकार कर लेने से विधान का यह प्रावधान विशेषतया व्यवहार रूप में स्थगित हो जायेगा।

इन कारणों से मैं किसी संशोधन को भी स्वीकार नहीं करता।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या डॉक्टर अम्बेडकर उम्मीदवार के हित अथवा अंश के बता देने के भी विरुद्ध हैं? क्या वे इस प्रकार की घोषणा के भी विरुद्ध हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु संशोधन यह नहीं है

***श्री एच.वी. कामत:** वह संशोधन का भाग है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु वह संशोधन नहीं है

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) के उप-खण्ड (ग) के पश्चात् निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

"(घ) और देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथव संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य ठहराया गया हो।'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) में और खण्ड (2) की व्याख्या में, 'परिलाभ के पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'लाभ के पद' ये शब्द रख दिये जायें।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के उप-खण्ड (क) के स्थान पर निम्न पदावली रख दी जाये:

'(क) वह प्रथम सूची के भाग 1 के उस समय उल्लिखित किसी राज्य का शासक है अथवा भारत का या ऐसे किसी राज्य का मन्त्री है; अथवा।'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के खण्ड (ख) के आगे निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले, अपना पद-त्याग कर देगा।'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ग) जो व्यक्ति प्रधान चुना जायेगा वह अपने पद के प्रकार्यों तथा दायित्व को ग्रहण करने से पूर्व किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने सारे अधिकार, उपाधि, अंश, संपत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है तथा उनसे अलग हो जायेगा; और प्रधान के ऐसे समस्त अधिकार उपाधि, अंश, संपत्ति अथवा हित को भारत सरकार खरीद लेगी।'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में इस संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 47 विधान का भाग हो।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 47 विधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 47-ए

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1126 लगभग वैसा ही है जैसा कि संशोधन संख्या 1125 है, यद्यपि बिल्कुल वैसा नहीं है। प्रोफेसर शाह इसे पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'47-A. Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office declare and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and shall make over all such right, title, share, or interest to Government of India, to be held, during his term of office, in trust for him.' "

(47-क. कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे अलग हो जायेगा जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है; और वह उन सब अधिकारों, उपाधियों, अंशों, संपत्ति अथवा हितों को भारत सरकार को सौंप देगा, जिससे कि भारत सरकार उन्हें उसके पद-काल में उसकी ओर से प्रन्यास-रूप में रखेगी।)

जैसे कि आपने कृपा करके बताया है, यह पूर्णतः पिछले संशोधन जैसा नहीं है, जिसे कि इस परिषद् में पेश करने का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ था। पिछले संशोधन में मैंने यह सुझाव रखा था कि प्रधान के हित को राज्य खरीद लेगा, किन्तु यहां उस हित को प्रन्यास के रूप में रखा जायेगा। वह स्वामी रहेगा, केवल उसे किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं हो सकेगा, राज्य द्वारा किसी प्रकार समर्थन अथवा सहायता प्राप्त किसी व्यापार, वाणिज्य अथवा हित में किसी प्रकार की गड़बड़ की सम्भावना नहीं रहती। श्रीमान्, पिछले संशोधन का विरोध जिस तर्कहीनता से किया गया था, उस पर मुझे आश्चर्य हुआ। यदि किसी की गम्भीर

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

युक्तियों के उत्तर में उसके समक्ष ऐसी बातें रखी जायें कि जैसे हो सकता है सारे मन्त्री एक ही साथ प्रधान पद के लिये खड़ा होना चाहें, और यदि उसकी अनुमति दे दी जायें, तो अराजकता हो जायेगी; तो मेरे विचार में ऐसा कहना भी ठीक हो सकता है कि सारे मन्त्री एक साथ बीमार हो सकते हैं जिससे कि वे अपने पद के प्रकार्यों को न कर सकें, और सारा प्रशासन नौकरशाही पर छोड़ना पड़े। यह उचित अथवा लौकिक तर्क नहीं है। और ऐसी विपत्तिपूर्ण घटना भी हो सकती है, किन्तु ऐसे मामले में, केवल मानवीय बुद्धि इसे संभालने में शक्तिहीन होगी। किन्तु यदि आप मेरे संशोधनों पर औचित्य के धरातल से ही आपत्ति करना चाहें और असत्य कल्पना में उड़ना न चाहें तो मेरा निवेदन है कि इस मामले में मैं आपसे किसी परस्पर विरोधी अथवा असंभव चीज को मानने के लिये नहीं कह रहा हूं।

राज्य द्वारा सहायता प्राप्त अथवा समर्थन प्राप्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा तथा परित्याग करने के लिये किसी उम्मीदवार से कहने का परिणाम यह होगा कि प्रधान-पद के लिये कोई उम्मीदवार नहीं होगा, ऐसा सोचना तो मामले को बेहूदापन तक पहुंचाना है। आखिर, माननीय डॉक्टर अम्बेडकर के प्रति समस्त यथायोग्य आदर सहित, मैं ख्याल करता हूं कि इस देश में बहुमत ऐसे लोगों का है जिनके पास कोई अधिकार, उपाधि अथवा सम्पत्ति नहीं है। इस देश में अत्यधिक बहुमत किसी ऐसे हितों से रहित है। अतः इन क्षेत्रों में अपना कोई स्वार्थ न रखने वाले उम्मीदवारों को चिराग लेकर ढूंढने की वैसी आवश्यकता न होगी जैसी कि डॉक्टर अम्बेडकर अपनी विरोध भावना के कारण समझते हैं।

यदि डॉक्टर अम्बेडकर सोच रहे हैं कि वही वर्ग प्रधान-पद के लिये योग्य होगा जिनके ऐसे हित अथवा अंश हैं, तो मैं कहना चाहता हूं कि यह बात अनुचित है। मुझे आशा है कि उनकी समझ में आ जायेगा कि उनकी ऐसे प्रलोभनों से रक्षा करना वांछनीय है, जिनसे कि रक्षा करने का इस संशोधन में प्रयत्न किया गया है।

इसके अतिरिक्त ऐसा कोई प्रावधान किसी अन्य विधान में नहीं है, यह तो कोई कारण नहीं है कि हम डॉक्टर अम्बेडकर जैसे बुद्धिमान के पथ-प्रदर्शन में नई परम्परा क्यों न स्थापित करें। हम स्वयं अपने उदाहरण उत्पन्न कर सकते हैं, जिनका कि शायद अमरीकी लोग वैसे ही अनुकरण करें जैसे कि हमने अंग्रेजों

अथवा ऐंग्लो-सेक्शन जातियों से यह बातें ली हैं। यदि कोई नई बात ठीक है तो डॉक्टर अम्बेडकर और उनके साथी उसको अपनाने में क्यों डरते हैं? उनके सारे तर्कों में मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी जिससे यह पता लगे कि मैं जो चीज़ रख रहा हूं वह स्वयं गलत है।

***उपाध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह, क्या मैं प्रार्थना करूं कि आप डॉक्टर अम्बेडकर का उत्तर न दें।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** डॉक्टर अम्बेडकर अपने पथ से दूर चले गये थे। यह मेरे व्यवहार के विरुद्ध है.....

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं सुझाव रखूं कि हम दोनों एक ही व्यवसाय के हैं अत: हमें उनकी कमजोरी से अधिक उच्च सिद्ध होना चाहिये।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूं; किन्तु मैं यह अनुभव अवश्य करता हूं, श्रीमान्, कि इस प्रकार के वादविवाद में तर्क अनुपस्थित होता है तथा पक्षपात का ही बाहुल्य होता है। यदि ऐसा है तो मैं भी दृढ़ संकल्प होकर अपने प्रत्येक संशोधन को पेश करता रहूंगा, चाहे परिणाम कुछ भी हो। मुझे यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि संसार के समक्ष, उन लोगों के समक्ष जो कि पक्षपातहीन हैं, हम आदर्श विधि-निर्माता नहीं कहला सकते यदि हम भावी सन्तति के निमित्त इन सब संशोधनों को रद्द करने पर ही तुले रहते हैं। मुझे तो केवल यही कहना है, श्रीमान्!

अब इस संशोधन को लेता हूं, मैं यह बता देता हूं कि इसमें मैंने शब्द बदल कर जानबूझ कर यह प्रयत्न किया है कि एक ही बात को दोहराने के दोष पर मुझे अनियमित नहीं ठहराया जा सके। यह कहा गया था, और बिल्कुल अनुचित रूप में कहा गया था, कि इसमें वह भी व्यवसाय शामिल हो जायेंगे जो राज्य द्वारा संचालित हों। ऐसी कोई बात नहीं है। यहां मैं केवल उस व्यापार, उद्योग अथवा वाणिज्य की चर्चा कर रहा हूं जिसे राज्य द्वारा समर्थन अथवा सहायता प्राप्त हो। राज्य द्वारा संचालित उद्योग अथवा व्यवसाय से यह सर्वथा भिन्न है। मेरा यह ख्याल था कि इस विधान के मसौदे को बनाने वालों को 'राज्य द्वारा संचालित' तथा 'राज्य द्वारा समर्थन अथवा सहायता प्राप्त' इन शब्दों में अन्तर तो पता ही होगा। यदि वे इस अन्तर को नहीं समझते, तो मुझे खेद है कि यह मसौदा ऐसे लोगों द्वारा तैयार किया गया है जो इस प्रकार की साधारण बातों में अन्तर नहीं समझते।

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

फिर तो ऐसा भी हो सकता है कि वे 'खरीदने' और 'न्यासधारी बनने' के अन्तर को भी गलत समझ जायेंगे, अथवा गलत पढ़ जायेंगे, मेरे विचार में तो यह दोनों बातें भी सर्वथा भिन्न हैं। श्रीमान्, अंग्रेजी विधान का आधार परिपाटियां हैं, कोई लिखित आधार नहीं है। मुझे विश्वास है कि इस बात को तो डॉक्टर अम्बेडकर भी मानेंगे। ऐसा तो है ही, अब मैं एक उदाहरण देना चाहता हूं कि राज्य के उच्चाधिकारियों से कैसी ईमानदारी की आशा की जाती है। श्रीमान्, कोई चालीस वर्ष पहले की बात है जब कि अंग्रेजी जल-सेना कोयले के स्थान पर तेल जलाना आरम्भ करने के प्रश्न पर विचार कर रही थी। तेल का उत्पादन कुछ कम्पनियां करती थीं जिनका विदेशों में हित था, पर कोयला वहीं उत्पन्न होता था। कोयले और तेल के प्रश्नों पर जांच करने के लिये जो समिति नियुक्त हुई थी उसका सभापतित्व एडमिरल फिशर द्वारा किया जाना था। समिति के तीन सदस्य थे जिनके विचार एक से थे। अतः यह पहले ही निश्चित था कि समिति का क्या निर्णय होगा। एडमिरल फिशर के पास आंग्ल-परशियन तथा इरानियन आयल कम्पनी के कुछ अंश थे, और वे जानते थे कि सिफारिशों के क्या परिणाम होंगे, अतः वे, उस समय के बादशाह एडवर्ड सप्तम के पास गये और उनकी सम्मति मांगी। वे जानते थे कि रिपोर्ट प्रकाशित होते ही उन अंशों का कितना मूल्य बढ़ेगा। बादशाह ने अपनी सम्मति दे दी और एडमिरल ने उनका परामर्श मान लिया, कि यदि वे सम्माननीय व्यक्ति हैं तो उन्हें वे सब अंश बेच देने चाहियें, क्योंकि कोयले के स्थान पर तेल के प्रयोग से उन्हें काफी लाभ होगा। हो सकता है कि यहां एडमिरल फिशर के जोड़ का कोई नहीं है; किन्तु मुझे तो आशा है कि इस देश में, जो कि गांधीजी के नेतृत्व में इतना आगे बढ़ा है, ऐसे व्यक्ति अवश्य हैं, जो कि इस बात के लिये तैयार होंगे, बहुत ज्यादा तैयार होंगे, कि यदि राज्य के प्रधान जैसे उच्च पद के लिये उन्हें चुन लिया जाये, तो वे अपने ऐसे अधिकारों तथा हितों को छोड़ दें जिनसे कि उन पर जरा भी संदेह हो सके। बम्बई की नगरपालिका में भी ऐसी परिपाटी है कि यदि कोई व्यक्ति कारपोरेशन द्वारा संचालित किसी व्यवसाय से सम्बन्धित हो तो उसके विषय में कारपोरेशन में प्रश्न उठ जाने पर वह मत नहीं दे सकता। यदि वह आदर्श आपके लिये अनुकरणीय नहीं है, यदि वह सिद्धान्त आपको स्वीकार्य नहीं है, तो मुझे खेद है कि यह परिषद् व्यर्थ ही गांधीजी जैसे लोगों के नाम का प्रयोग करती है जब कि हम इस विधान में उनके आदर्शों पर नहीं चल रहे हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** क्या मैं बोल सकता हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** यदि आप जिद करें।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपका फिर कृतज्ञ हूं क्योंकि आप अपनी शक्तियों का मेरे पक्ष में प्रयोग कर रहे हैं। मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का पूर्णत: समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। उनका संशोधन बहुत उचित है। वे चाहते हैं कि जो व्यक्ति प्रधान-पद पर चुना जाये, उसे किसी भी प्रकार संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा समर्थन प्राप्त किसी भी व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में अपने अधिकारों, अंशों, सम्पत्ति आदि की घोषणा कर देनी चाहिये और उन्हें छोड़ देना चाहिये तथा इन सब अधिकारों आदि को सरकार के सुपुर्द कर देना चाहिये जिससे कि वे उस अवधि के लिये न्यास रूप में रहें जिस अवधि में वह भारतीय गणराज्य के उच्च पद पर आसीन रहे। अब, श्रीमान्, मेरे विचार में यह एक उचित संशोधन है किन्तु मुझे भय है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार नहीं करेंगे। प्रोफेसर शाह सुन्दर संशोधन पेश किया करते हैं किन्तु वे सब अस्वीकृत हो जाते हैं क्योंकि विधान के मसौदे के प्रस्तावक माननीय सदस्य उनके पक्ष में नहीं होते। अत: आपकी अनुमति से मैं इसमें एक शाब्दिक संशोधन पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपको ऐसा करने की अनुमति नहीं दे सकता। उस अवस्था में अन्य लोग भी शाब्दिक संशोधन रखना चाहेंगे। आप डॉक्टर अम्बेडकर की स्वीकृति के लिये सुझाव रख सकते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मेरा सुझाव यह है: श्री शाह के संशोधन में यह नहीं कहा गया है कि जब एक व्यक्ति प्रधान चुना जाये तब उसे अपनी समस्त वैयक्तिक सम्पत्ति की घोषणा और परित्याग कर देना चाहिये। वे केवल इतना ही कहते हैं कि उन्हें राज्य द्वारा सहायता अथवा समर्थन प्राप्त किसी प्रतिष्ठान में अपने अधिकारों, अंशों अथवा हितों को छोड़ देना चाहिये, और भारत सरकार को ऐसे हितों को न्यासधारी के रूप में उसके लिये रखना चाहिये। मेरा कहना है कि यह भारत सरकार को मिलेगी अत: मेरा ख्याल था कि डॉक्टर अम्बेडकर इसे स्वीकार कर लेंगे। यदि भारत सरकार के कानून-मन्त्री के रूप में डॉक्टर अम्बेडकर उसे स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं तो भारत सरकार की जगह वह प्रधान की पत्नी तथा उसके बालकों को मिलना चाहिये। वह बहुत सीधी-सी बात है। संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार होगा:

"Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare and divest himself of all his right, title, share,

[श्री तजम्मुल हुसैन]

property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and all such right, title, share or interest of the President shall be bought up by the President's wife and children, if he has none then to Dr. Ambedkar himself, the Law Minister."

(कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले, संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा समर्थन-प्राप्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे वंचित हो जायेगा; और प्रधान के वे समस्त अधिकार, उपाधि, अंश अथवा हित प्रधान की पत्नी तथा बच्चों द्वारा खरीद लिये जायेंगे, यदि उसके कोई पत्नी-बालक नहीं हों तो वे सब कानून-मन्त्री डॉक्टर अम्बेडकर को मिल जायेंगे।)

इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं और मैं अपना मौखिक संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन पेश होने वाला नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे कुछ नहीं कहना है।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के बाद निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'47-A. Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and shall make over all such right, title, share, or interest to Government of India, to be held, during his term of office, in trust, for him.' "

(47-ए. कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा

समर्थन प्रदत्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे वंचित हो जायेगा और वह उन सब अधिकारों, उपाधियों, अंशों अथवा हितों को भारत-सरकार को सौंप देगा, जिससे कि भारत सरकार उन्हें उसके पद-काल में उसकी ओर से प्रन्यासरूप में रखेगी।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 48

***उपाध्यक्ष:** संशोधनों को एक-एक करके देखने पर, मैं देखता हूं कि संशोधन संख्या 1127, 1128 और 1130 सदृश आशय के हैं। संशोधन संख्या 1130 सर्वाधिक व्यापक है और उसे पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) में

'(क) "न तो संसद् का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का" इन शब्दों के स्थान पर "न तो संसद् के किसी आगार का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का" ये शब्द रख दिये जायें;

(ख) "संसद् का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य" इन शब्दों के स्थान पर "संसद के किसी आगार का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का सदस्य" ये शब्द रख दिये जायें;

(ग) "संसद का अथवा उस विधान-मण्डल का, जैसी कि स्थिति हो" शब्दों के स्थान पर "उस आगार का" ये शब्द रख दिये जायें।'"

मौलिक भाषा में कुछ दोष थे और हमने उसे सुधारने का प्रयत्न किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, हमने कतिपय नियमों को स्वीकार करके यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि जिन संशोधनों का उद्देश्य किसी अनुच्छेद की भाषा को अधिक सुन्दर बनाना ही हो उनके पेश करने की अनुमति नहीं दी जायेगी। भाषा में सुधार करना अब

[मि. नजीरुद्दीन अहमद]

किसी संशोधन का उद्देश्य नहीं होता। यह संशोधन पेश होने से पहले आशयपूर्ण दिखाई देता था, किन्तु डॉक्टर अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है कि इसका अभिप्राय केवल अनुच्छेद की भाषा को सुधारना है। इस कारण, यद्यपि इसे पेश किया जा चुका है, किन्तु इस पर मत नहीं लिये जाने चाहियें।

***उपाध्यक्ष:** सभापति को कुछ अधिकार दिये गये हैं जिनका वह ऐसे तरीके से प्रयोग करेगा, जो उसे सर्वोत्तम दिखाई पड़े।

मुझे पता लगा है कि इस संशोधन पर एक संशोधन है—पांचवें सप्ताह की सूची एक का संशोधन संख्या 28 जो कि श्री वी.एस. सरवटे के नाम में है।

***श्री वी.एस. सरवटे** [संयुक्त राज्य—ग्वालियर-इन्दौर-मालवा (मध्य-भारत)]: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 48 में संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1130 में, अंग्रेज़ी के शब्दों 'House of Parliament' के पहले 'of the ruling family of Indian States and is in receipt of political pension or of an allowance on account of privy purse' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस संशोधन का यह अभिप्राय है कि यदि किसी देशी राज्य के राज्यपरिवार का कोई सदस्य प्रधान चुन लिया जाये तो उसे जो भत्ते अथवा निजी-कोष मिलता हो उसे वह छोड़ना होगा।

मेरा उद्देश्य यह है कि इस गणराज्य का प्रधान ऐसे विश्वासों का होना चाहिये और ऐसे आदर्श पर दृढ़ होना चाहिये जो कि गणराज्यात्मक तथा प्रजातंत्रात्मक हों। स्पष्ट है कि जो व्यक्ति पहले किसी देशी राज्य का नरेश था और अब जो निजी-कोष अथवा भत्ते पा रहा हो उससे आशा नहीं की जा सकती कि वह इस शर्त को पूरा करे। यह भी कहा गया है कि प्रधान तो लगभग नाममात्र का प्रतीक ही होगा। पर इसके साथ ही मैं यह कहना चाहता हूं कि संकटकाल में प्रधान से आशा की जाती है कि वह कतिपय अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों तथा कर्त्तव्यों को करे। इसके अतिरिक्त अपनी स्थिति और अवस्था के अनुसार उससे आशा की जाती है कि वह जनतन्त्रात्मक गणराज्य के हित में, जो कि हम

भारत में स्थापित करना चाहते हैं, कुछ प्रेरणा तथा निर्देश दे। अब उस व्यक्ति से इन शर्तों के पूरी होने की आशा नहीं की जा सकती जो कि जो ऐसे परिवार का है और उसमें पला है, जिसकी परम्परायें ऐसी थीं और हैं कि वे उन विचारों से सर्वथा भिन्न हैं जिन्हें कि हम गणराज्यात्मक अथवा लोकतन्त्रात्मक कहते हैं। अत: इस संशोधन का यह उद्देश्य है कि देशी राज्य के भूतपूर्व नरेश को प्रधान नहीं बनने देना चाहिये। किन्तु उससे उसके प्रधान पद के लिये खड़ा होने में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु इस हद तक बाधा होती है कि यदि वह चुन लिया जाये तो वह भत्ते नहीं ले सकता। यदि इस संशोधन को और अधिक ध्यान से पढ़ा जायें तो पता लगेगा कि राज्य-परिवार के अन्य सदस्यों के लिये प्रधान पद के लिये खड़ा होने या प्रधान बनने का निषेध नहीं किया गया है, क्योंकि उन सदस्यों को निजी-कोष के रूप में कोई भत्ते नहीं मिलते। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गवर्नरों, गवर्नर-जनरल और विशेषत: नये प्रधान से यह आशा की जाती है कि वह अपने विश्वासों, अपने पालन-पोषण तथा अपनी समस्त मनोवृत्ति के कारण ऐसा व्यक्ति हो कि वह जनतंत्र और गणराज्य के प्रति इतना निष्ठावान हो कि उसके विचारों, उसके जनतंत्रात्मक तथा गणराज्य सम्बन्धी विचारों के विषय में संदेह का लेशमात्र भी न हो सके; किन्तु भूतपूर्व नरेश के विषय में इसकी आशा करना सम्भव नहीं है। अत: मेरा निवेदन है कि मौलिक संशोधन के प्रस्तावक इस संशोधन को स्वीकार कर लें।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1127 ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर के नाम में है। क्या वे चाहते हैं कि इस पर मत लिये जायें?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1128 क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिये जायें?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1129 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1131 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1132 । यह पेश हो सकता है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

उपाध्यक्षः संशोधन संख्या 1133 और 1134 लगभग एक ही हैं संशोधन संख्या 1133 पेश हो सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्! यह तो केवल शाब्दिक संशोधन है।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (2) में 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर 'लाभ का पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, यह संशोधन केवल एकरूपता के निमित्त ही है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1134 । क्या आप चाहते हैं कि मैं इस पर मत लूं?

***श्री एच.वी. कामतः** डॉक्टर अम्बेडकर ने मेरी बात पहले ही ठीक कर दी है; किन्तु मैं संशोधन संख्या 1135 पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** अभी हम संशोधन संख्या 1134 तक ही पहुंचे हैं। संशोधन संख्या 1135 । आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं प्रस्ताव करता हूं, श्रीमान्।'

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा और' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

अर्थात्, खण्ड इस प्रकार बन जायेगा, यदि संशोधन स्वीकार कर लिया जाये: "प्रधान को वे परिलाभ और अधिदेय दिये जायेंगे...आदि।"

इस संशोधन को पेश करते हुए, श्रीमान्, मैं डॉक्टर अम्बेडकर से कुछ प्रकाश चाहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कौन-सा संशोधन?

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या 1135 । परिषद् के समक्ष इस संशोधन को पेश करने का मेरा अभिप्राय यह है कि मैं डॉक्टर अम्बेडकर से

प्रार्थना करूं कि वे विधान में ऐसी महत्त्वहीन, ऐसी तुच्छ बात को रखने की आवश्यकता पर प्रकाश डालें। मैं जानता हूं और मैं अबाधरूपेण स्वीकार करता हूं, शायद हमें इस बात पर गर्व भी हो, कि यह विधान सारे संसार में सबसे भारी है। हमने अपनी परिषद् के लिये हाथी का ही राजचिह्न तथा प्रतीक चुना है। कदाचित् यह उसके अनुरूप ही है कि हमारा विधान भी ऐसा भारी है जैसा कि संसार में कोई नहीं बना। श्रीमान्, क्या मैं अत्यंत नम्रता से पूछ सकता हूं कि विधान में प्रधान के निवासस्थान जैसी चीज़ें रख कर उसे भारी बनाने में क्या बुद्धिमत्ता है? यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है, तो क्या ऐसा कहना भी समानरूपेण उचित नहीं होगा कि प्रधान को इतने नौकर मिलेंगे, उसे इतने चपरासी मिलेंगे, एक ए.डी.सी. मिलेगा, प्रधान को एक अन्तरंग मन्त्री मिलेगा तथा और भी क्या-क्या होगा। यह भी तर्क उपस्थित किया जा सकता है। मैं जानता हूं, श्रीमान्, कि प्रधान का निवासस्थान एक प्रतीक है अतः विधान में इसकी चर्चा होनी चाहिये। मैं नहीं जानता कि ऐसी चीजें विधान में रखने के कितने उदाहरण हैं।

***एक माननीय सदस्यः** आयर का विधान।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उसे भी लेता हूं। अमरीकी विधान में, मुझे पता नहीं है कि व्हाइट हाउस की चर्चा विधान में है या नहीं। सब जानते हैं कि व्हाइट हाउस प्रधान का निवासस्थान है। इंग्लिस्तान को लीजिये, मेरे विचार में राजनीति तथा आधुनिक विषयों के जानकार विद्यार्थी बकिंघम प्रासाद से अधिक 10, डाउनिंग स्ट्रीट को जानते हैं। 10, डाउनिंग स्ट्रीट, जो कि प्रधान-मन्त्री का निवासस्थान है, बकिंघम प्रासाद से अधिक विख्यात है। हमारे विधान में प्रधान-मन्त्री के निवासस्थान की कोई चर्चा नहीं है, हमने केवल प्रधान के निवास का उल्लेख किया है। जैसा कि अभी-अभी डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा है प्रधान तो लगभग प्रतीक ही होगा और उससे कहीं अधिक शक्तिशाली व्यक्ति प्रधान-मन्त्री होगा। अतः मेरी व्यक्तिगत राय में तो यह अधिक संगत होगा कि प्रधान के निवासस्थान के स्थान पर प्रधान-मन्त्री के निवासस्थान का उल्लेख किया जाये।

एक और छोटी-सी बात यह है। फर्ज किया, प्रधान के दो निवासस्थान हों—मेरे ख्याल में पहले अधिकांश प्रान्तों के गवर्नरों और केन्द्र में भी गवर्नर जनरल के पास दो-दो मकान होते थे, एक गर्मी के लिये और दूसरा-दूसरी ऋतु के लिये—फर्ज किया दो मकान हों, तो क्या इस अनुच्छेद के कारण राज्य को यह अधिकार नहीं रहेगा कि प्रधान को दो निवासस्थान दे सके, एक गर्मियों के लिये

[श्री एच.वी. कामत]

और दूसरा अन्य ऋतुओं के लिये? क्या इससे इसमें बाधा पड़ेगी? अत:, बात यह है कि प्रधान के निवासस्थान जैसी छोटी-सी चीज़ के लिये क्यों चिंता की जाये? आखिर, प्रधान किसी वृक्ष के तले अथवा मैदान में तो नहीं रहेगा; उसके सर छिपाने के लिये जगह तो होगी ही, उसको मकान तो मिलेगा ही; इसके कहने की क्या आवश्यकता है। आखिर हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि हमारे देश में प्रत्येक को सर छिपाने के लिये स्थान मिले। क्या परिषद् का यह अभिप्राय है, क्या डॉ. अम्बेडकर का यह ख्याल है कि प्रधान के रहने के लिये छत भी नहीं होगी? उसके लिये एक, दो, तीन मकान हो सकते हैं। क्या पता, कितने होंगे? इस अनुच्छेद द्वारा सरकार अथवा राष्ट्र को इस अधिकार से क्यों वंचित करते हो कि वह प्रधान के लिये अनेक निवासस्थानों का प्रबन्ध कर सके? अत: मेरा ख्याल है कि, श्रीमान्, यह बात, पता नहीं यह विधान में कैसे आ गई, इतनी तुच्छ, छोटी-सी बात है कि यह विधान में रखने योग्य नहीं है और इससे हमारे विधान में अनावश्यक, अप्रसंगानुकूल तथा व्यर्थ बातों का भार हो जायेगा।

अत: मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रधान के निवासस्थान विषयक अनुच्छेद के इस भाग को निकाल दिया जाये।

(संशोधन संख्या 1136 और 1137 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1138, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' के आगे निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and such secretarial, clerical, or expert consultative asistance at public expense as he may consider necessary for the due discharge of his duties and responsibilities under the Constitution, or the laws made thereunder for the time being in force.' "

(और लोक-व्यय पर ऐसी सचिवालयात्मक, क्लर्कों की अथवा विशेषज्ञों की परामर्श-सम्बन्धी सहायता प्राप्त होगी जो कि वह, विधान के अधीन

अथवा उसके अन्तर्गत निर्मित किसी विधि के अधीन जो कि उस समय प्रवृत्त हो, अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों की उचित पूर्ति के लिये आवश्यक समझे।)

श्रीमान्, मैंने कुछ ही अनाक्रमणक संशोधन रखने का साहस किया है जिनमें से यह भी एक है। मुझे यह इतना सुस्पष्ट दिखाई देता है कि कल्पना, विचार तथा असम्भावना की असाधारण उड़ान की बात छोड़ कर, किसी को इस पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये। तदनुसार मैं इसके समर्थन में विशिष्ट तर्क पेश करके परिषद् का समय नष्ट नहीं करूंगा। मुझे विश्वास है कि परिषद् की सद्भावना उसे इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करेगी।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1139 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1140, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि निम्न नया खण्ड अनुच्छेद 48 में जोड़ दिया जाये:

'(5) Every President on completion of his term of office and retirement, shall be given such pension or allowance during the rest of his life as Parliament may determine, provided that during the lifetime of any such President in retirement, the pension or allowance granted to him shall not be varied to his prejudice.' "

[(5) प्रत्येक प्रधान को अपने पद की अवधि पूर्ण करने पर, तथा पद-निवृत्त होने पर, उसके शेष जीवन के लिये ऐसी पेंशन अथवा भत्ते मिलेंगे, जो कि संसद् निश्चित करे, पर किसी ऐसे प्रधान के जीवनकाल में, जो कि पद-निवृत्त हो, उसके लिये स्वीकृत पैन्शन अथवा भत्तों को उस पर विपरीत प्रभाव डालते हुये बदला न जायेगा।]

श्रीमान्, यह एक और नवीन बात है जो कि अमरीकी विधान में नहीं पाई जाती, अतः यह भी नई प्रथा चलाने का प्रयत्न होगा। पर मुझे भरोसा है कि केवल यही बात मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध युक्ति-रूप में स्वीकार नहीं की जायेगी, कि ऐसी बात बुद्धिमान अमरीकियों ने नहीं रखी है अतः हमें भारत में ऐसा करना अपेक्षित नहीं है।

[प्रो. के.टी. शाह]

यदि वह युक्ति पेश की जाये तो क्या मैं यह बता सकता हूं कि संसद् अधिनियम अथवा मन्त्री-गण वेतन अधिनियम में बाद के एक संशोधन द्वारा अत्यन्त पुरानी संसद्-माता ने पद-निवृत्ति पर प्रधान-मन्त्री को पैंशन देने का प्रावधान कर दिया है और, यदि मैं गलती पर नहीं हूं तो विरोधी नेता के लिये भी ऐसा ही किया गया है। इस बात पर कोई मेरी बात को गलत न समझ ले, अत: मैं चाहता हूं इस बाद के कथन के सम्बन्ध में किसी को मुझ पर यह दोष नहीं लगाना चाहिये कि मैं अपने वैयक्तिक आशय से यह बात कह रहा हूं। मैं तो ब्रिटिश संसद् द्वारा प्रावहित कानून का उद्धरण मात्र दे रहा हूं, जिसमें यह प्रावधान है कि पद-मुक्त प्रधान-मन्त्री को समुचित योग्यता प्रदान कर दी जाये जिससे कि संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) के प्रधान-मन्त्री की प्रतिष्ठा कर एक बार आसीन व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में से न गुजरना पड़े, जिनमें कि, श्री एस्क्विथ के समान, उसके मित्रों को उसकी सहायता करनी पड़े तथा उसे अपने जीवन के अवशिष्ट वर्षों को शान्ति से गुजारने के लिये किसी प्रकार के प्रन्यास का प्रावधान करना पड़े।

श्रीमान्, हम सबके लिये यह कम चिंता की बात नहीं है कि जो व्यक्ति भारत के प्रधान के पद पर रह चुका हो, उसे परिस्थितियों के वश, आर्थिक आवश्यकता के वश, किसी सेवा, व्यापार, वाणिज्य अथवा किसी प्रकार के कार्य अथवा राजनीतिक उपायों का आश्रय न लेना पड़े, जिससे कि उसकी आजीविका चल सके। हमारा यह सर्वोच्च सार्वजनिक आदर्श होना चाहिये, सबसे बड़ी ध्यान रखने योग्य बात होनी चाहिये कि जो भी राज्य का प्रमुख चुना जा चुका हो, उसे पद-निवृत्ति पर ऐसी आजीविका मिलनी चाहिये जो उस समय भारत के भूतपूर्व प्रधान के योग्य समझी जाये।

इसका उदाहरण भी है जैसा कि अभी मैंने बताया है और यह बात सिद्धान्त के अनुसार भी है। उदाहरण के लिये उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये बनाये गये प्रावधानों को ही लीजिये। वे भी राज्य की सार्वभौम शक्ति के एक अंश के स्वामी होते हैं, और संसार में सब स्थानों पर असंदिग्ध रूप में उन्हें पद-निवृत्ति पर पैन्शन दी जाती है। आपको इसके बहुत से उदाहरण मिलेंगे, कि प्रधान को पद-निवृत्ति पर कुछ न कुछ पैन्शन दी जाती है। यदि आप उच्च न्यायाधिकारियों को पद-निवृत्ति पर पैन्शन दे सकते हैं और देते हैं तो आप राज्य के प्रमुख को, जो कि जनता की सार्वभौमिकता का प्रतीक होता है, चाहे ऐसा

थोड़े ही समय के लिये हो, किसी प्रकार का भत्ता अथवा पैन्शन, नाम चाहे कुछ भी हो, क्यों नहीं देना चाहते, जिससे कि उसे आवश्यकता के वश होकर ऐसे साधनों का आश्रय न लेना पड़े, जिन्हें माननीय न समझा जाये, अथवा ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठा के योग्य न समझा जाये, जो कि राज्य का प्रमुख रह चुका हो?

श्रीमान्, जिन विधानों के उदाहरण प्रायः पेश किये जाते हैं वे ऐसे समय पर बनाये गये थे जहां ऐसे लोगों के लिए बनाये गये थे जहां ऐसे पद के लिये खड़ा होने वाले के लिये यह मान लिया जाता था कि वह ऐसा सम्पन्न होगा, सांसारिक सम्पत्ति के विषय में ऐसा अच्छी प्रकार समृद्ध होगा कि यह प्रावधान व्यर्थ तथा अनावश्यक रहेगा।

वास्तव में अमरीका के प्रधान तथा इंग्लिस्तान के प्रधान-मन्त्री के विषय में यह कहा गया है कि पद-ग्रहण करने पर वे जितने धनी थे, पद छोड़ने पर वे हजारों मुद्राओं से दरिद्र हो गये। फिर भी पद-निवृत्ति के पश्चात् उनकी समुचित आजीविका के लिये कोई मुआवजा आवश्यक नहीं समझा गया। उससे क्या प्रगट होता है? इस विषय में, श्रीमान्, यदि इस देश में प्रचारित आदर्श वास्तव में क्रियान्वित होते हैं, यदि किसी दिन निर्धन से निर्धन को भी प्रधान चुने जाने के अधिकार का दावा तो करने की योग्यता होनी ही है, यदि किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसका कि राज्य द्वारा संचालित ही नहीं—उसके द्वारा सहायता, समर्थन अथवा रक्षण प्राप्त उद्योग में अधिकार अथवा हित न हो, प्रधान बनना है, तो ऐसे मामले में मुझे आशा है कि इस पद पर मान और प्रतिष्ठा के साथ रहने के पश्चात् की आर्थिक कठिनाइयों के विचार से ही ऐसे व्यक्ति को, जो अन्यथा अत्यन्त योग्य हो, इस पद के लिये उम्मीदवार अथवा पदाधिकारी चुने जाने के लिये अयोग्य न समझा जायेगा।

श्रीमान्, मेरे विचार में संसदीय कानून-निर्माण द्वारा ऐसा कोई प्रावधान करने के पक्ष में कारणों का ऐसा बाहुल्य है कि जिन शब्दों में मुझे यह पेश करने का सम्मान प्राप्त हुआ है, उन शब्दों में नहीं, तो किसी अन्य तरीके से और अन्य किसी रूप में, इस संशोधन में निहित सिद्धान्त मसौदे बनाने वालों और उनके समर्थकों को पसन्द आयेगा; और इस प्रकार अधिनियम का भाग बन जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि जो संशोधन पेश किये गये हैं मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। प्रोफेसर शाह का संशोधन संख्या 1138 कुछ अनावश्यक-सा दीखता है। इसमें कहा गया है कि प्रधान को सचिवालय सम्बन्धी सहायता मिलेगी। निस्संदेह ऐसा होगा ही, चाहे विधान में कोई प्रावधान हो या न हो।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरे संशोधन संख्या 1140 के विषय में, जिसमें कि यह आयोजन है कि प्रधान को पद-निवृत्ति पर पैन्शन दी जायेगी, मैं देखता हूं, कि मैं उनके द्वारा व्यक्त भावना से सहमत तो हूं कि जो लोग संसद् के सदस्य बन कर जनता की सेवा करना चाहते हैं उन्हें बहुत वैयक्तिक त्याग करना पड़ता है, उन्हें उनके जीवन के अन्त के लगभग बिना किसी साधन के छोड़ नहीं देना चाहिये, फिर भी इस संशोधन विशेष को भी स्वीकार करना कुछ कठिन ही दिखाई देता है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो प्रधान बन जाता है और अपने पद की अवधि को, जो कि पांच वर्ष है, पूरा कर लेता है उन पांच वर्षों के अन्त में पैंशन का अधिकारी होगा। दूसरी कठिनाई यह है कि उनके संशोधन के अनुसार उसकी पैन्शन को उसके जीवन काल में बदला नहीं जायेगा। अब उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक व्यक्ति प्रधान बन चुका है और अपनी पूरी अवधि तक उस पद पर रह चुका है, और प्रोफेसर शाह के संशोधन के अनुसार स्थिति प्राप्त कर चुका है, तो मान लीजिये वह पुनः प्रधान चुन लिया जाये, तब उसकी स्थिति क्या होगी? स्थिति यह है कि वह प्रधान पद का वेतन लेता रहेगा और साथ ही पैन्शन का अधिकारी भी होगा। हमें यह भी अधिकार नहीं होगा कि उसकी पैन्शन को कम करके वेतन के बराबर कर सकें। अतः जिस रूप में संशोधन पेश किया गया है, मैं नहीं समझता कि यह किसी के द्वारा स्वीकार्य क्रियात्मक बात है। किन्तु इस सामान्य विचार के विषय में जो कि व्यक्त किया गया है, कोई संदेह नहीं है कि संसद में कुछ वर्षों की सेवा के पश्चात् सदस्यों को, जिनमें प्रधान भी सम्मिलित है, किसी प्रकार की पैन्शन मिलनी चाहिये, और मेरे विचार में यह अच्छी बात है जिसे कि ब्रिटिश संसद् ने कार्यान्वित किया है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भावी संसद् इस बात का ध्यान रखेगी।

तत्पश्चात्, निवासस्थान के सम्बन्ध में प्रोफेसर कामत द्वारा उठाये गये प्रश्न के विषय में.....

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रोफेसर कामत नहीं हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** किन्तु वे प्रोफेसर कहलाने के पूर्ण अधिकारी हैं क्योंकि वे इतना अधिक बोलते हैं। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामतः** ईश्वर न करे मैं कभी प्रोफेसर बनूं। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अस्तु, मेरे मित्र श्री कामत ने मुझ से यह समझाने के लिये कहा था कि हमने प्रधान के पदावास के लिये यह प्रावधान क्यों रखा है, और उन्होंने मुझे इस बात पर डांटा भी है कि मैं विधान में ऐसी और अन्य छोटी बातें रख कर उसको भारी बना रहा हूं। यह सोचा जा सकता है कि यह छोटी-सी बात है और इसे विधान में रखना अपेक्षित नहीं था। किन्तु मैं श्री कामत से यह प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या उनकी यह इच्छा है अथवा नहीं कि प्रधान को सरकारी निवासस्थान मिलना चाहिये और संसद् को इसके लिये प्रावधान करना चाहिये? क्या यह बहुत बड़ी त्रुटि हो गई कि इस बात को विधान में ही रख दिया गया है? यदि इच्छा यह है कि.....

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि प्रधान-मन्त्री के लिये निवास स्थान होगा, अथवा नहीं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, यह तो एक युक्तिमात्र है। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि वे इस बात का समर्थन करते हैं या नहीं कि प्रधान को सरकारी निवासस्थान मिलना चाहिये। यदि इस सिद्धान्त को मानते हैं तो मुझे यह साधारण आशय की बात दिखाई देती है कि इसके लिये विधान में प्रावधान रखा जाता है अथवा यह बात भावी संसद् के निर्णयार्थ छोड़ दी जाती है। हमने इस बात को विधान में रखा है इसका कारण यह है कि भारत सरकार अधिनियम में, बहुत-सी परिषदीय आज्ञाओं में, जो कि भारत सरकार अधिनियम की द्वितीय अनुसूची द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अन्तर्गत भारत-मन्त्री ने निकाली थीं, गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल के लिये निवासस्थानों का उल्लेख हैं; और हमने विधान में इस प्रावधानविशेष को रख कर विद्यमान परम्परा का ही अनुसरण किया है; और मैं नहीं समझता कि हमने सुरुचि के विपरीत कोई कार्य किया है अथवा कोई ऐसी बात की है जो कि हम करना नहीं चाहते थे।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक बात स्पष्ट करवाना चाहता हूं। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या अनुच्छेद 48 के इस खण्ड विशेष के कारण प्रधान को एक से अधिक सरकारी निवास-स्थान देने में रुकावट होगी? इसमें लिखा है कि प्रधान के लिये 'एक पदावास' होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** बिल्कुल नहीं। दो सरकारी निवास-स्थान भी हो सकते हैं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

फिर, श्री सरवटे के संशोधन संख्या 28 के विषय में मैं कहना चाहता हूं कि इस विषय पर तब विचार हो सकता है जब कि हम उन रियासतों के विधान पर विचार करें जो कि भारतीय संघ में प्रवेश करेगी। आज तो स्थिति इतनी अनिश्चित है कि ऐसा कोई प्रावधान करना बहुत कठिन है जैसा कि श्री सरवटे ने सुझाया है।

***उपाध्यक्ष:** अब संशोधनों पर एक-एक करके मत लिये जायेंगे।

संशोधन संख्या 1130 जो कि डॉ. अम्बेडकर के नाम से है;

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) में:

'(क) "न तो संसद् का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का" इन शब्दों के स्थान पर "न तो संसद् के किसी आगार का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का" ये शब्द रख दिये जायें;

(ख) "संसद् का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य" इन शब्दों के स्थान पर "संसद् के किसी आगार का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का सदस्य" ये शब्द रख दिये जायें;

(ग) "संसद् का अथवा उस विधान-मण्डल का, जैसी कि स्थिति हो" इन शब्दों के स्थान पर "उस आगार का" ये शब्द रख दिये जायें।'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 28, जो श्री सरवटे के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 में संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1130 में, अंग्रेजी के शब्दों 'House of Parliament' के पहले 'of the ruling family of Indian States and is in receipt of political pension of an allowance on account of privy purse' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1128, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न नया खण्ड रख दिया जाये:

'(1) If the President is a member of any Legislature of the Union or of any State, he shall be deemed, on his making and subscribing the oath under article 49, to have resigned such membership.'

[(1) यदि प्रधान संघ अथवा किसी राज्य के किसी विधान-मण्डल का सदस्य हो, तो अनुच्छेद 49 के अन्तर्गत शपथ लेने पर यह समझा जायेगा कि उसने उस सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1133, जो डॉक्टर अम्बेडकर के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (2) में 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर 'लाभ का पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1135, जो श्री कामत के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1138, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' के आगे निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and such secretarial, clerical, or expert consultative assistance at public expense as he may consider necessary for the due discharge of his duties and responsibilities under the Constitution, or the laws made thereunder for the time being in force.' "

(और लोक-व्यय पर ऐसी सचिवालयात्मक, क्लर्कों की अथवा विशेषज्ञों की परामर्श-सम्बन्धी सहायता प्राप्त होगी जो कि वह विधान के अधीन

[उपाध्यक्ष]

अथवा उसके अन्तर्गत निर्मित किसी विधि के अधीन जो कि उस समय प्रवृत्त हो, अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों की उचित पूर्ति के लिये आवश्यक समझे।)

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1140, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है:

"कि निम्न नया खण्ड अनुच्छेद 48 में जोड़ दिया जाये:

'(5) Every President on completion of his term of office, and retirement, shall be given such pension or allowance during the rest of his life as Parliament may determine, provided that during the life time of any such President in retirement, the pension or allowance granted to him shall not be varied to his prejudice.' "

[(5) प्रत्येक प्रधान को अपने पद की अवधि पूर्ण करने पर तथा पद-निवृत्त होने पर उसके शेष जीवन के लिये ऐसी पैन्शन अथवा भत्ते मिलेंगे, जो कि संसद् निश्चित करे, पर किसी ऐसे प्रधान के जीवन-काल में, जो कि पद-निवृत्त हो, उसके लिये स्वीकृत पैन्शन अथवा भत्तों को उस पर विपरीत प्रभाव डालते हुये बदला न जायेगा]"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् के समक्ष प्रश्न यह है कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 48 विधान का भाग हो।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 48 को विधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 48-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम नये अनुच्छेद 48-ए और प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1141 पर आते हैं। आप देखेंगे कि यह संशोधन, संशोधन संख्या 1125 और 1126 के सदृश है जो कि अस्वीकृत हो चुके हैं। अत: इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

अनुच्छेद 49

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 49 पर आते हैं।

परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 49 विधान का भाग हो।"

हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे।

पहला संशोधनों संख्या 1142 है, जो माननीय श्री जी.एस. गुप्त के नाम में है, यह शाब्दिक संशोधन है और इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1143, 1144 और 1145 एक से आशय के हैं। संशोधन संख्या 1144 पेश हो सकता है जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम में है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 49 में 'भारत के मुख्य न्यायाधीश' इन शब्दों के पश्चात् 'अथवा उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के सबसे उच्च (सीनियरमोस्ट) न्यायाधीश, जो कि उपलब्ध हो' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, यह केवल इतना ही प्रावधान करने के लिये है कि यदि भारत का सर्वोच्च न्यायाधीश उपस्थित न हो तो कोई और न्यायाधीश उसके प्रकार्य को कर सके, और यह उचित ही है कि सर्वोच्च न्यायालय का सबसे उच्च न्यायाधीश इस प्रकार्य को करे। श्रीमान्, मुझे भरोसा है कि परिषद् इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी क्योंकि इस पर और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** डॉक्टर अम्बेडकर, क्या आप संशोधन को स्वीकार करते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तब मुझे संख्या 1143 पर मत लेना अपेक्षित नहीं है।

तब संशोधन संख्या 1145 आता है, जो श्री जसपतराय कपूर के नाम में है।

(संशोधन संख्या 1145 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** फिर संशोधन संख्या 1146 आता है जो श्री कामत के नाम में है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन संख्या 1146 को कुछ संशोधित रूप में, निम्न प्रकार पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 49 में निश्चयोक्ति अथवा शपथ में 'मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं, इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में, मैं, अमुक, शपथ लेता हूं।'

अथवा विकल्प में

'मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं।'"

श्रीमान्, जैसे मैंने विधान को ध्यानपूर्वक पढ़ा, तो मेरे मन में एक दु:खद बैचेनीपूर्ण भावना रही कि विधान में एक कमी है, विधान में एक शून्यता है।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, क्या आप 'ईश्वर के नाम में' ये शब्द रखने का संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने अपने संशोधन को ही संशोधित कर दिया है।

***उपाध्यक्षः** अच्छा, आप अपने ही संशोधन को संशोधित कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** हां, श्रीमान्! जब मैंने विधान को देखा, तो मेरे मन में यह भावना रही कि इसमें कुछ कमी है। हम ईश्वर की कृपा और आशीर्वाद मांगना भूल गये थे, मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों हुआ। मुझे यह विचित्र सी बात लगती है कि एक भारतीय परिषद् के समक्ष, भारतीय-विधान पर बोलते हुये, मुझे आगे बढ़कर आपके सामने इस संशोधन के लिये अनुरोध करना पड़ता है, मुझे यह अनुरोध करना पड़ता है कि ईश्वर को हमारे विधान में स्थान मिलना चाहिये। श्रीमान्, मेरी तो यह धारणा थी कि प्रस्तावना का ही आरम्भ ईश्वर की स्तुति से होना चाहिये था। अस्तु, वह बाद में आ रही है और हम देखते हैं कि उसका क्या होता है। कदाचित् यह ईश्वर की इच्छा थी कि विधान उसके नाम से वंचित होना चाहिये और बाद में विधान पर वाद-विवाद के समय भगवान् के नाम की स्तुति की जानी चाहिये। क्या मैं पूछ सकता हूं, श्रीमान्, क्या मेरे मित्र ऐसा समझते हैं—वे मित्र जो कि इस प्रार्थना का कोई महत्त्व अथवा मूल्य नहीं

समझते—कि भगवान् को हटा देने से, अपने मस्तिष्कों और विचारों से अथवा विधान से 'भगवान्' शब्द को हटा देने से, वे विधान से ईश्वर को ही हटा रहे हैं? ईश्वर न करे, उनके ऐसा कोई विचार हो। क्या वे समझते हैं कि वे कानून बना कर ईश्वर के अस्तित्व को मिटा सकते हैं? श्रीमान्, हम भगवान् को जितना दूर हटाते हैं, हम जितना उससे भागते हैं, उतना ही वह हमारा पीछा करता है। फैंसिस थॉम्पसन की एक सुन्दर कविता है—जिसका नाम 'The Bound of Heaven' है, जिसमें ऐसे व्यक्ति के मन की अवस्था का वर्णन है जो परमेश्वर से भागना चाहता था।

"I fled Him down the nights
And down the days,
I fled Him down the arches of the years, etc."

(मैं उससे भागा रातों में,
मैं उससे भागा दिवसों में,
मैं उससे भागा था, चाहे,
वर्षों के कितने द्वारों में; इत्यादि)

इसी प्रकार वह लिखता है, फिर वह कहता है:

"But with unhurrying chase, unperturbed pace
The feet of God pursued him,
And a voice beat more instant than the feet,
All things betray thee, who betrayest me."

(किन्तु सहज पीछा करके
निर्विघ्न चाल से दौड़ रहे।
भगवान् के पद उसके पीछे,
आते थे, साथ-साथ बढ़ते;
चरणों से भी द्रुत गति वाला,
इक शब्द ध्वनित सा होता था;
सब वस्तु तुझे ठुकरा देंगी,
जो तू है मुझको ठुकराता।)

भारत में, श्रीमान्, जहां कि हमारी प्राचीन संस्कृति है, आध्यात्मिक विवेक है, और हम सबको पूर्वजों से प्राप्त एक बपौती है—हम सबके लिये ही है वह मेरे

[श्री एच.वी. कामत]

लिये यह कहना अनावश्यक है कि किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे सब कार्य भगवान् को अर्पण करने की गम्भीरतम आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत रहते हैं। हिन्दू परिपाटी तथा परम्परा के अनुसार हमारे संस्कार के आरम्भ में 'हरि ओम् तत्सत्' कहा जाता है। हमारे मुस्लिम मित्रों के कुरान शरीफ़ में प्रत्येक पद के आरम्भ में यह स्तुति होती है 'बिसमिल्ला अल रहमान अल रहीम'। हमारे सिख मित्रों के गुरु ग्रन्थ साहब का आरम्भ 'एकोंकार सत्नाम कर्त्ता' आदि शब्दों से होता है। हमारे ईसाई मित्रों को उनके मसीहा ने आज्ञा दी है कि 'जो भी तुम्हारे पास है उसे छोड़ दो और मेरा अनुसरण करो'। यह आशय हमारे अपने धर्म अर्थात् गीता में भी है:

सर्वधर्मान् परित्यज, मामेकं शरणं ब्रज!

सबका परित्याग कर दो, यहां तक कि सर्वधर्मों का भी, और केवल मेरी अर्थात् 'भगवान्' की शरण लो। अत: मुझे इस संशोधन पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, खाने-पीने से लेकर सर्वोच्च पूजन तक हमारे सारे कार्य भगवान् के प्रति अर्पण, बलिदान होते हैं; अर्थात्

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

और, श्रीमान्, यहां हम बहुत गम्भीर कार्य कर रहे हैं और यदि खाना-पीना भी भगवान् के प्रति अर्पण का कार्य होता है तो यह विधान भी, जो कि पवित्र कार्य है, ईश्वर के अर्पण अवश्य होना चाहिये। हमारे सारे गुरु—समस्त प्राचीन संत, साधू और ऋषि—महात्मा जी और नेता जी के दिनों तक एक सर्वोच्च भावना से प्रभावित रहे हैं, कि हमारे समस्त कार्य ईश्वर के प्रति अर्पित होने चाहियें। मैं परिषद् को यह बताना नहीं चाहता कि किस प्रकार महात्मा जी और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के हृदय और आत्मायें ईश्वर की भक्ति और प्रेम से ओतप्रोत थे और वे किस प्रकार उस अनन्त के जीवनदायी जल में सदा स्नान करते रहते थे। श्रीमान्, आज के नेताओं की बात लेता हूं, जैसे कि सरदार पटेल, हमारे अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू और हमारे गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचारी हैं, तो आप मुझे उनके कुछ अर्वाचीन भाषणों में से उद्धरण देने की अनुमति देंगे, जिनमें कि उन्होंने हमसे अनुरोध किया है कि हमें अपने नित्यप्रति के कार्यों में ईश्वर को नहीं भूलना चाहिये।

श्रीमान्, गवर्नर-जनरल ने हैदराबाद की कार्यवाही के पश्चात् धन्यवाद-दिवस को अपनी वक्तृता में कहा था:

"मन्त्रीगण, सेनानायक, सैनिक, पुलिस और नागरिक सब धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु भगवान् के हिलाये बिना संसार में पत्ता भी नहीं हिलता। हम समझ लेते हैं कि हमने महान् कार्य किये हैं।"

हमारे लिये ऐसा समझना धोखा है कि हमने महान् कार्य किये हैं। आगे चल कर गवर्नर-जनरल ने कहा था:

"सच तो यह है कि वे समस्त कार्य ईश्वर ने किये हैं। हमें विनीत होना चाहिये और उसने अपनी जिस कृपा की हम पर अपार वर्षा की है उसके योग्य बनना चाहिये। हमें गर्व नहीं करना चाहिये। हमें प्रतिदिन अपने हृदयों में पारस्परिक प्रेम और विश्वास का संचार करना चाहिये।"

गत वर्ष स्वतन्त्रता-दिवस पर अपना संदेश ब्राडकास्ट करते हुये हमारे अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था:

"परमेश्वर की सहायता से और गांधी जी के नेतृत्व में हमने स्वतंत्रता-संग्राम को जीत लिया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है।"

कुछ दिन हुये सरदार पटेल ने बम्बई में कहा था:

"हम भगवान् के कृतार्थ हैं कि हम कुछ हद तक अपने देश में स्थिर अवस्था स्थापित करने में सफल हो गये हैं।"

अत: मैं अनुभव करता हूं कि विधान में, प्रस्तावना में भगवान् की कृपा और आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करने के अतिरिक्त, यदि हम गम्भीरतापूर्वक शपथ लेने का कार्य हम ईश्वर के नाम में नहीं करते तो यह केवल एक शून्य संस्कार ही बन जायेगा। जब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर में आरज़ी हकूमते-हिन्द के प्रधान सेनाध्यक्ष तथा प्रान्तीय प्रधान बने थे, तब उन्होंने इस प्रकार शपथ ली थी:

"ईश्वर के नाम पर मैं प्रतिज्ञा करता हूं।"

अत: श्रीमान्, अन्त में मैं परिषद् से अनुरोध करता हूं कि हमने एक अनन्त तथा आध्यात्मिक बपौती प्राप्त की है, एक ऐसी बपौती प्राप्त की है जो न शारीरिक है, न भौतिक है और न लौकिक ही है: वह ऐसी बपौती है जो

[श्री एच.वी. कामत]

आत्मा-सम्बन्धी है—वह आत्मा अब भी है, सदा से चली आई है तथा सदा रहेगी, वह बपौती भी अनादि अनन्त है। हमें उस अमूल्य बपौती को खोना नहीं चाहिये। हमें इस बपौती को नष्ट नहीं करना चाहिये; हमें अपनी प्राचीन परम्परा के अनुरूप होना चाहिये, अपने आध्यात्मिक विवेक के अनुरूप होना चाहिये। हमें अनन्त काल से जो ज्योति प्राप्त हुई है उसे यों ही गवां नहीं देना चाहिये। हमें स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में संसार को आत्मा से जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें ऐसा प्रकाश करना चाहिये जो यावत चन्द्रदिवाकरौ संसार को प्रकाशित करता रहे। मैं अपनी वक्तृता उन शब्दों के साथ समाप्त करूंगा जो सदा गांधी जी के मुंह पर रहते थे:

"ईश्वर अल्लाह तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान्।"

मैंने आज इस परिषद् के समक्ष अपने इस संशोधन को संशोधित रूप में पेश किया है, जिससे कि इस विषय में, जिसे कि मैं आधारभूत तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझता हूं, परिषद् एकमत रहे। अत: मैंने आपकी अनुमति से इसे संशोधित कर दिया है। श्रीमान्, मैं मौलिक संशोधन संख्या 1146 को, संशोधित रूप में, परिषद् में पेश करता हूं और परिषद् से निवेदन करता हूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं कि संशोधन संख्या 1146 के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

"कि अनुच्छेद 49 में 'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में शपथ लेता हूं।'"
गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता

इसका अर्थ यह होगा कि जो भगवान् में विश्वास करते हैं वे उसके नाम में शपथ लेंगे और जो इस मत के हैं कि ईश्वर के विषय में न कुछ जाना जा सका है और न जाना जा सकता है उन नास्तिकों को केवल गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करने की स्वतन्त्रता होगी, जिससे प्रत्येक को अपने धर्म की स्वतन्त्रता होगी। व्यवहार रूप में मेरा संशोधन वही है जो श्री कामत का है:

केवल इतना ही अन्तर है कि ईश्वर पर विश्वास न करने वालों के लिये शब्द परिवर्तन कर दिया गया है, जिससे कि वे गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति कर सकें तथा अन्य लोग 'भगवान् के नाम पर शपथ ले सकते हैं'।

इस संशोधन को पेश करते समय मैं ईश्वर के नाम के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता हूं। वास्तव में मेरे मित्र श्री कामत के संशोधन पर मुझे प्रसन्नता है तथा गर्व है। आज पहली बार विधान-परिषद् इस प्रश्न पर विचार कर रही है कि विधान में भगवान् का नाम रखा जायेगा अथवा नहीं। वास्तव में हमें उसके नाम को आरम्भ में ही रखना चाहिये था, किन्तु क्योंकि प्रस्तावना पर विचार नहीं किया गया, अतः जब हम विधान पर आरम्भ से विचार करेंगे तब ईश्वर की स्तुति का समावेश करने का फिर प्रयत्न करेंगे।

विधान-परिषद् के यह प्रस्ताव पारित करने से, कि भारत एक असाम्प्रदायिक राज्य होगा, उस प्रस्ताव के फलस्वरूप बहुत-सी भ्रान्त धारणायें बन गई हैं। हमें ही उनको मिटाना है। मेरे विचार में, भगवान् के नाम से राज्य की असाम्प्रदायिकता में कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि प्रधान चुने जाने पर कोई व्यक्ति शपथ लेने जाता है, यद्यपि वह प्रधान होता है, फिर भी वास्तव में वह शपथ लेने के पहले प्रधान नहीं बनता; वह कोई व्यक्ति ही होता है। जब वह शपथ लेने के लिये वेदी पर जाता है उस समय उसकी कोई सरकारी हैसियत नहीं होती। वह अपनी वैयक्तिक हैसियत में केवल एक व्यक्ति ही होता है और उसी हैसियत से वह शपथ लेता है। यदि ईश्वर के नाम से राज्य के असाम्प्रदायिक गुण पर प्रभाव पड़ता हो तब भी केवल किसी अधिकारी के कारण ही पड़ सकता है। शपथ ले लेने के पहले प्रधान केवल एक व्यक्ति ही रहता है। और जब एक व्यक्ति शपथ लेता है वह अपने वैयक्तिक विश्वास के अनुसार ही लेता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या अन्तर है?

श्री महावीर त्यागी: जो इस अन्तर को देख सकते हैं, वे उसे ढूंढ सकते हैं। शपथ एक व्यक्तिगत मामला है और इसे अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक लेना चाहिये और जिस अवसर पर शपथ ली जाती है वह अत्यन्त गम्भीर होता है, विशेषतया जबकि राज्य का प्रमुख शपथ ले रहा हो। वैयक्तिक धर्म में कोई मन्दिर, वेदी अथवा संस्कार नहीं हुआ करते। वह परम परमेश्वर और सदाचार-सम्बन्धी अनन्त कर्त्तव्यों के विषय में व्यक्ति के आन्तरिक सिद्धान्तों तक सीमित होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति का निजी धर्म है। वह उसका अपना दृष्टिकोण है। मेरे मित्र जानना चाहते हैं कि क्या अन्तर है। अन्तर यह है कि वैयक्तिक धर्म ईश्वर में

[श्री महावीर त्यागी]

शुद्ध निष्ठा ही है; इसमें किसी रीति, विश्वास अथवा संस्कार को स्थान नहीं है। भगवान् न ही शारीरिक कल्पना है और न मानसिक कल्पना ही है। यह तो केवल शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान है। इसमें कोई रीति-रिवाज नहीं होता। न मन्दिरों की ही आवश्यकता है और न वेदियों की ही जरूरत है। मैं राज्य के असाम्प्रदायिक होने के सिद्धान्त तथा तर्क को खूब समझता हूं। क्योंकि प्रत्येक देश में, जहां कि कई धर्म तथा कई जातियां हैं, कोई राज्य को एक रंग में नहीं रंग सकता। ऐसी अवस्था में राज्य को असाम्प्रदायिक होना चाहिये जिससे कि राष्ट्र का संगठन हो सके। हमारे यहां भारत में अनेक धर्म तथा जातियां हैं। किन्तु उन सब में ईश्वर का नाम तो है ही। प्रत्येक जाति भगवान् पर विश्वास करती है, प्रत्येक वर्ग भगवान् पर विश्वास करता है तथा प्रत्येक सम्प्रदाय भगवान् पर विश्वास करता है। अत: यदि हम अपने राज्य के विधान में भगवान् का नाम रख दें तो इसमें हमें राज्य को एकरूप बनाने में सहायता मिलेगी, और यह बात राज्य को व्यवहार रूप में असाम्प्रदायिक बना देगी, इसकी असाम्प्रदायिकता को भंग नहीं करेगी। यह केवल तर्क की बात है। सत्य तो यह है कि जब से हमने इस परिषद् में यह घोषणा की कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक होगा तभी से इस घोषणा के भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जा रहे हैं तथा भ्रान्तियां उत्पन्न हो रही हैं। लोग सोचने लग गये कि जहां तक सरकार का सम्बन्ध है उसने तो ईश्वर को सर्वथा मिटा ही दिया है। मुझे आशा है कि विधान-परिषद् यहां ईश्वर का नाम रख कर कुछ हद तक उन भ्रान्तियों को निर्मूल कर देगी। कुछ मानी राजनीतिज्ञ पश्चिम के चालू नारों की नकल करने के प्रयत्न में इस भ्रम में ग्रसित हो गये कि असाम्प्रदायिक राज्य में भगवान् का नाम लेना निषिद्ध होना चाहिये। असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ है सत्य और भगवान् और अनन्त का राज्य जिसमें किसी धर्म-विशेष के विषय में पक्षपात न हो। भारत में हमारी संस्कृति, हमारी नीति और हमारी सभ्यता का भवन एक ही आधार, भगवान् पर खड़ी की गई है, और यदि भगवान् को मिटा दिया जाये तो मैं नहीं जानता कि भारत के लिये स्वराज्य का क्या अर्थ होगा। व्यक्तिगत रूप में मैं कई अन्य लोगों, बड़ों तथा छोटों, और करोड़ों लोगों के साथ तीस वर्ष स्वराज्य के लिये लड़ा था। स्वराज्य के विषय में हमारी कल्पना रामराज्य की थी। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं थी। यदि मुझे यह कहने दिया जाये तो मैं राजनीतिक स्वतन्त्रता की धेला भर भी परवाह नहीं करता। भारत को केवल अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के खो जाने पर ही दु:ख नहीं भोगना पड़ा पर उसका वास्तविक दु:ख उसकी आत्मा की स्वतन्त्रता का खो जाना है। हमारी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पर

पहला प्रहार तब हुआ था जब कि सोमनाथ पर आक्रमण हुआ था। उसी समय से, इस सैंकड़ों वर्षों में, भारत ने कभी स्वयं को स्वतन्त्र अनुभव नहीं किया। वास्तविक स्वराज्य का अर्थ है 'रामराज्य'। इस असाम्प्रदायिकता की भावना का कैसा गलत अर्थ लगाया गया है, इस विषय पर प्रसंगान्तर नहीं होगा। यदि मैं परिषद् पर विश्वास करके उन्हें यह बता दूं कि अभी हाल ही में आल इण्डिया रेडियो के अधिकारियों के एक सम्मेलन में एकमत से यह निर्णय किया गया था कि अब गीता, रामायण, कुरान और बाइबिल का पाठ बन्द कर देना चाहिये। यदि असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ यह है कि हमारे बालकों को रामायण का ज्ञान नहीं कराया जायेगा अथवा वे गीता, कुरान अथवा ग्रन्थ को सुन न सकेंगे तो राजनीतिक स्वतन्त्रता से क्या लाभ है? यह तो खींचातानी करके अर्थ निकालना हुआ। यदि इस रामराज्य में से भगवान् को मिटा दिया गया तो भारत राम के बिना अयोध्या के समान हो जायेगा। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि राम से मेरा आशय हिन्दू ईश्वर से है और ईसाई ईश्वर से भी है। (*हंसी*) मेरा निवेदन है कि ईश्वर की तो सभी मानते हैं अतः हमें उसकी स्तुति करनी चाहिये तथा जब अवसर आये तब प्रस्तावना में भी ऐसा ही किया जाये। ब्रिटिश संसद् भी जब समवेत् होती है तब प्रार्थना के पश्चात् ही होती है। वे प्रार्थना करते हैं। वादविवाद में आप देखेंगे कि संसद् इतने बजे समवेत हुई और प्रार्थना के पश्चात् कार्यवाही आरम्भ की। उनका भी साम्प्रदायिक राज्य नहीं है। आयरलैण्ड में, तथा अन्य देशों में भी, भगवान् को नहीं भुलाया गया है। मैं अपने मित्र श्री कामत के प्रति अनुगृहीत हूं, जिन्होंने इस शब्द 'भगवान्' को यहां रखा है। हम ईश्वर की पूजा करते हैं और हमारी निष्ठा का यहां उल्लेख होना चाहिये। भारत ईश्वर में विश्वास करता है अतः भारतीय राज्य को भगवान् का राज्य रहना चाहिये। इसे ईश्वरीय राज्य होना चाहिये, ईश्वरहीन राज्य नहीं। हमारा असाम्प्रदायिकता का यही अर्थ है। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं संशोधन संख्या 1147 को पेश करता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 49 में शपथ के प्रपत्र में 'और मैं अपने आपको भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' ये शब्द हटा दिये जायें।"

इन शब्दों को निकालने के लिये मेरी युक्ति यह है कि शपथ लेने अथवा निश्चयोक्ति करने का अभिप्राय ही यह होता है कि कुछ कानूनी कर्त्तव्य उत्पन्न

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

हो जाते हैं। यदि यह शपथ भंग हो जाये, तो प्रधान अथवा उप-प्रधान का प्राभियोग किया जाता है। भारत के एक नागरिक होने के नाते एक व्यक्ति जनता की सेवा में रत रहेगा ही। अत: यह आवश्यक नहीं है कि शपथ में यह पवित्र घोषणा भी रखी जाये। आप देखेंगे कि अमरीकी विधान में उल्लिखित शपथ-प्रपत्र में इस शपथ के बाद का भाग सम्मिलित नहीं है। अत: मेरा निवेदन है कि बाद के भाग को निकाल देना चाहिये क्योंकि यह केवल पवित्र घोषणा है।

श्री कामत द्वारा पेश किये हुये संशोधन के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं बहुत प्रसन्न हूं कि उन्होंने ईश्वर के पक्ष में तर्क उपस्थित किये हैं तथा ये युक्तियां पेश की हैं कि ईश्वर को हमारे विधान से नहीं मिटाना चाहिये। मेरा निवेदन है कि यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो हम उन लोगों को अलग कर रहे होंगे जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है। इस देश में और अन्यत्र ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं होता। मैं जैनियों का उदाहरण दे सकता हूं। वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते और बहुत से नास्तिक भी होते हैं। यदि श्री कामत का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो आप उन लोगों को प्रधान बनने से रोक रहे होंगे। यदि यह संशोधन स्वीकार हो जाये तो आप एक मजबूरी पैदा कर रहे होंगे कि सबका भगवान् पर विश्वास होना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** मि. करीमुद्दीन ने मेरे संशोधन को देखा नहीं है। अगर देखा है तो समझा नहीं है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** समझने का ठेका तो आपका ही है। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामत:** कभी-कभी।

उपाध्यक्ष: क्या आप समझाना चाहते हैं? आपका संशोधन तो मि. करीमुद्दीन के संशोधन पर ही है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** मेरा निवेदन यह है कि असाम्प्रदायिक राज्य में, जब आप विधान बना रहे हैं तो शपथ लेने के समय लोगों का श्रेणी-विभाजन क्यों हो? इस बात का संकेत नहीं होना चाहिये कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं अथवा नहीं। विधान में शपथ में ईश्वर को रखना जनतंत्र की भावना के प्रतिकूल है। मेरा निवेदन है कि ईश्वर का उल्लेख न करना उसे मिटाना नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या मैं बता सकता हूं, श्रीमान्, केवल स्पष्ट करने के लिये कि श्री कामत के संशोधन के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रधान को भगवान् में सच्चा विश्वास होना चाहिये। इसके अनुसार तो उसे भगवान् के नाम पर केवल आरम्भ करना होता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूंः

"कि अनुच्छेद 49 में 'जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' इन शब्दों के पश्चात् निम्न शब्द जोड़ दिये जायेंः

'and will throughout the term of my office as such President so conduct myself as to leave no ground for any charge of seeking to promote my own interest or my family's aggrandisement, and that in any act I may have to do or appointment I may have to make, I shall consider only the interest of the public service and of the country collectively.' "

(और मैं प्रधान के रूप में अपने पद की अवधि में ऐसा आचरण करूंगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी अभियोग के लिये कोई आधार न रहे, और मुझे जो भी कार्य करना पड़े अथवा नियुक्ति करनी पड़े, उसमें मैं केवल लोकसेवा और सामूहिक रूप से देश के हित का ही विचार करूंगा।)

मुझे भय है कि यह कुछ नाजुक-सा मामला है। किन्तु एक प्राचीन उक्ति है कि 'जहां देवता प्रवेश करने में डरते हैं वहां मूर्ख सहसा प्रवेश कर जाते हैं।' क्योंकि मैं अपने को दूसरी उपाधि के लिये अत्यधिक रूप से तथा बारम्बार योग्य सिद्ध कर रहा हूं, अतः मुझे भय है कि मुझे इस नाजुक मामले में भी वही कार्य पूर्ण करना होगा।

मेरे मतानुसार, प्रधान की शपथ में, अन्य बातों के अतिरिक्त, एक आश्वासन तथा निश्चयोक्ति सन्निहित होनी चाहिये कि वह केवल देश के हितों का, जनता की सेवा का ही ध्यान रखेगा; और उसे जो भी कुछ कार्य अथवा नियुक्ति करनी पड़े उसमें अपने हितों का अथवा अपने परिवार के लाभ का विचार नहीं करेगा।

यह दयनीय स्थिति है, श्रीमान्, कि इस परिषद् में, जहां तक मैं समझ सकता हूं, बहुत कम लोग हैं जो सरकारी व्यवस्था की उस शुद्धता के समर्थन में आवाज़ उठायें, जो कि, हमें बताया गया है कि, इस देश में रामराज्य की स्थापना का अनिवार्य परिणाम होना चाहिये। श्रीमान्, चाहे पुनरावृत्ति के कारण मेरी बात सुनना

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

भार-सा लगे, किन्तु फिर भी मैं इस बात पर बल देना चाहता हूं कि विदेशी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध हमारे संघर्ष में जिन आदर्शों की दुहाई दी गई थी वे केवल पुस्तकीय सिद्धान्त ही नहीं रहने चाहिये; वे जीवित तथ्य होने चाहियें, उन्हें कार्यान्वित किया जाना चाहिये और वे दैनिक जीवन के वास्तविक अंग बन जाने चाहियें, जिन्हें देश में छोटे-बड़े सब स्वीकार करें।

मेरा यह भी निवेदन है कि उसके प्रतीकस्वरूप कोई बात इतनी स्पष्टता से कहीं नहीं रखी जा सकती जितनी प्रधान की शपथ सम्बन्धी इस भाग में रखी जा सकती है कि वह अपनी पदावधि में इस प्रकार आचरण करेगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी सन्देह का आधार ही न रहे, और उसे जो कार्य करने पड़ें अथवा नियुक्तियां करनी पड़ें, उनमें वह सर्वदा सामूहिक रूप से देश के हितों का ही ध्यान रखेगा और किसी व्यक्ति के हितों का नहीं।

यह भी दयनीय बात है, श्रीमान्, कि ऐसी बात पर बल देना आवश्यक हो गया है जो कि देखने में एक स्पष्ट सिद्धान्त दीखता है। इसे रखना आवश्यक नहीं होता, यदि हमें इस बात का कटु अनुभव नहीं होता कि लोग अपने कथनों को स्वयं भूल जाते हैं, लोग उन महान् सिद्धान्तों को भूल जाते हैं जिन्हें उन्होंने स्वयं व्यक्त किया था। क्योंकि, एक बार शक्ति प्राप्त होने पर वे शक्ति और स्थिति के मद से उन्मत्त हो जाते हैं और उस मद को अपने सिर पर इतनी स्वतन्त्रता से चढ़ जाने देते हैं कि वे भूल जाते हैं कि जीवनभर उन्होंने किन सिद्धान्तों का समर्थन किया है और वे प्रतिदिन अपने कार्यों से वास्तव में उन सिद्धान्तों का उल्लंघन करने लगते हैं जिनका कि उन्होंने स्वयं प्रचार किया था।

श्रीमान्, शक्ति एक भयानक औषधि है। यह इस देश में नई वस्तु है और मैंने लोगों से सुना है—मुझे स्वयं अनुभव नहीं है—कि नई मदिरा में पुरानी से अधिक नशा होता है। मेरी धारणा है कि भूतकाल में चाहे कुछ भी हुआ हो, किन्तु नये विधान में हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि राज्य का प्रमुख और देश-हितार्थ उसके अधीन कार्य करने वाले मुख्य अधिकारी ऐसे किसी संशय, किसी अभियोग अथवा विश्वसनीय कारण से स्वतन्त्र होने चाहियें कि अपने अनेकों कार्यों में, अपने अनेकों पदों तथा नियुक्तियों पर, उन्होंने अपने मतानुसार देश के हित के अतिरिक्त किसी अन्य बात की ओर ध्यान भी दिया है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि मानवीय मामलों में ऐसी आशंकाओं के लिये कुछ न कुछ आधार सदा मिल सकता है और जहां ठीक आधार नहीं मिलते वहां किंवदन्तियां फैल सकती हैं जिनमें ऐसी बातों की कल्पना की गई हो अथवा ऐसी बातें गढ़ी गई हों जो कि वास्तव में हैं ही नहीं, अथवा तुच्छ बातों की अतिशयोक्ति हो गई हो। मैं यह भी जानता हूं, श्रीमान्, कि सर्वोच्च सद्भावना के होते हुये भी मनुष्य गलती कर सकता है। मैं इस संशोधन द्वारा जो प्रावधान रखना चाहता हूं उसका आशय ऐसी त्रुटियां के लिये दण्ड देना नहीं है जो सद्भावना से अथवा अज्ञान में अथवा उचित प्रकाश न मिलने पर की गई हों। इन संशोधन द्वारा मैं केवल पद अथवा शक्ति के जान बूझ कर दुरुपयोग को रोकने का प्रयत्न कर रहा हूं, जिससे कि सामूहिक रूप से देश के हित की वृद्धि करने के स्थान पर शक्ति तथा प्राधिकार-आरूढ़ लोगों द्वारा व्यक्ति के अथवा परिवार के हितों की ही वृद्धि होती है।

अन्य देशों में ऐसा हुआ है; और हमारी बपौती के बावजूद ऐसे विषयों में भी ईश्वर का नाम रखने की हमारी प्रबल इच्छा के बावजूद भी मैं समझता हूं, हम अन्य लोगों की मूर्खताओं को दोहरा सकते हैं। मुझे भय है कि ईश्वर के नाम की केवल उपस्थिति ही मनुष्य की निर्बलता के विरुद्ध प्रतिभूति नहीं होगी अत: मैं इसकी स्पष्टरूपेण निश्चयोक्ति करवाना चाहता हूं, मैं चाहता हूं कि यह बात बलपूर्वक कही जाये कि जो लोग न्यासधारी हों, जो जनता के अधीन सर्वोच्च पद पर आसीन हों, और जिनके हाथों में दो, तीन अथवा चार वर्षों के लिये देश के भाग्य के निर्माण की शक्ति हो, वे कम से कम अपने विवेकानुसार तथा अपनी बुद्धि अनुसार तो उन दोषों से मुक्त रहेंगे, जिनकी मैंने इस संशोधन में कल्पना की है।

विशिष्ट उदाहरणों का उल्लेख करने से तो, श्रीमान्, द्वेष उत्पन्न होता है। श्रीमान्, इस प्रकार से दृष्टान्त देना व्यर्थ है जिन्हें हममें से अधिकांश जानते होंगे। कहावत प्रसिद्ध है, कम से कम मेरे प्रदेश में तो है ही, कि चाहे प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी का नाम जानता है पर कोई उसे बोलता नहीं। इस कारण मैं उस सिद्धान्त का उल्लंघन करके नामादि बताना कदापि नहीं चाहता जो कि ठीक भी हो सकते हैं तथा गलत भी। किन्तु मेरे विचार में इस विषय पर कोई मतभेद नहीं होना चाहिये कि राज्य का प्रमुख ऐसे किसी अभियोग से स्वतन्त्र होना चाहिये। अत: चाहे हम सर्वथा दरिद्र व्यक्ति को प्रधान न रखें, अथवा ऐसे मनुष्य को न रखें जिसके पारिवारिक बन्धन न हों, तथा कोई सम्बन्धी अथवा आश्रित न हो

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

तदपि हमें ऐसे अभिरक्षण पर बल देना चाहिये, जिसकी मानवीय दुर्बलता को वैयक्तिक प्रलोभन अथवा वैधानिक ढील पुष्ट न कर दे तथा ऐसी बातें न होने दे जो कि होनी ही नहीं चाहियें। मानवीय मस्तिष्क में बहुत-सी बातें उपजती हैं और ऐसे वकील हैं जो कि उस उपज के कार्य में सहायक होंगे। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जबकि लोगों ने अपनी शपथ की भावना का जानबूझ कर उल्लंघन किया है अथवा उसका गलत अर्थ निकाला है, चाहे उन्होंने शपथ के शब्दों का उल्लंघन न किया हो। मुझे इंग्लिस्तान के एक भूतपूर्व लार्ड चांसलर का मामला याद है, जिसके हाथ में बहुत-सी नियुक्तियां थीं जिन पर उसने अपने सम्बन्धियों को ही नियुक्त किया था। जब उसके कारनामें इतने बढ़ गये कि केवल उसके पुत्रों, भतीजों, भांजों और पोतों, धेवतों को ही नौकरियां मिल सकती थीं, तब लाड्र्स-परिषद् ने यह जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त की कि यह अभियोग ठीक है अथवा नहीं। समिति के सम्मुख बोलते हुये लार्ड चांसलर ने—मेरे विचार में वह लार्ड ऐल्डन था—इतना कहने का साहस किया कि, और गम्भीरतापूर्वक कहा कि 'मैंने शपथ ली है कि मैं केवल उन्हीं को नियुक्त करूंगा जिन्हें मैं जानता हूं कि वे अमुक प्रकार के हैं। और अपने पुत्रों, भतीजों आदि को मैं जितनी अच्छी प्रकार जानता हूं किसी अन्य को कैसे जान सकता हूं?' वह कहना भूल गया कि वह जिन्हें जानता है कि वे योग्य हैं उन्हीं को उसे नियुक्त करना चाहिये और केवल उन्हीं को नहीं जिन्हें कि वह केवल जानता हो। यही अन्तर तथा भेद था जिसे उस योग्य लार्ड ने उस समय याद रखने की चिन्ता नहीं की।

महारानी विक्टोरिया का मामला भी प्रसिद्ध है, कि 1869 में आयरलैण्ड में ऐंग्लीकन चर्च के समाप्त करने के समय, महारानी ने राजतिलक के समय की एक शपथ निकाली थी जिससे पता चलता था कि उन्होंने केवल इंग्लिस्तान के चर्च के रक्षण तथा परिरक्षण की शपथ ली थी। वे भूल गई थीं कि उन्होंने केवल इंग्लिस्तान में ही इंग्लिस्तान के चर्च के रक्षण की शपथ ली थी, तथा समस्त संसार में वरन् समस्त युक्त राज्य (यूनाइटेड किंगडम) में भी, उसका रक्षण करना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार महारानी के विरोध का अन्त कर दिया गया।

मेरा अभिप्राय यह है कि यद्यपि शपथ के शब्दों का दुरुपयोग करना अथवा जानबूझ कर गलत अर्थ निकालना, अथवा उसको अनुचित प्रकार से क्रियान्वित करना सम्भव है, किन्तु शपथ भी किसी प्रकार से प्रत्याभूत होती ही है। मैं जानता हूं कि यह सर्वथा ऐसी प्रत्याभूति नहीं है कि कोई चालाकी करना सम्भव न हो

किन्तु किसी न किसी प्रकार से यह प्रत्याभूति अवश्य है कि जो ऐसे पदों पर प्रतिष्ठित हैं उन्हें सदा अपने कर्त्तव्यों का, अपनी प्रतिज्ञाओं का स्मरण कराती रहेगी, और जिसके कारण वे ऐसे प्रकार से आचरण करेंगे कि उन पर कोई ऐसा सन्देह न किया जा सके जो कि उन लोगों के कार्यों अथवा बातों से किया जा सकता है जिन्होंने कि पारितोषिक के समान उच्च पदों की शक्ति को प्राप्त कर लिया है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, यह मामला ऐसा सुस्पष्ट तथा महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार की किसी बात पर विरोध होना ही नहीं चाहिये। मुझे आशा है यह परिषद्, अपनी उस परम्परा के अनुरूप जिसकी कि यह रक्षा करती रही है, मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, यह एक साधारण-सा खण्ड है जो प्रधान की शपथ से सम्बद्ध है। श्रीमान्, मुझे ईश्वर के अस्तित्व में तथा धर्म में भी दृढ़ विश्वास है किन्तु, श्रीमान्, मुझे यह कहना पड़ेगा कि हम ईश्वर का आशीर्वाद मांगते हैं, केवल इसीलिये परमात्मा का नाम विधान में रखना उचित नहीं होगा। यदि आपको ईश्वर पर सच्चा विश्वास है तो वह सर्वत्र व्यापक है। भगवान् यहां इस परिषद् में भी है। वह सर्वव्यापी है। आपको ईश्वर के अस्तित्व पर सच्चा विश्वास है तो उसे विधान में रखने मात्र से तथा इस प्रकार सन्तोष अनुभव करने से कोई लाभ नहीं है। इससे कोई लाभ नहीं है कि प्रधान ईश्वर के नाम पर शपथ ले तथा बाद में ईश्वर के उपदेशों के सर्वथा विरुद्ध कोई कार्य करे। एक और बात पर भी मुझे आपत्ति है; मैं अपने मित्र मि. करीमुद्दीन के विचारों से सहमत नहीं हूं कि असाम्प्रदायिक राज्य में 'ईश्वर' शब्द आ ही नहीं सकता। असाम्प्रदायिक राज्य का यह अर्थ नहीं है कि कोई व्यक्ति भगवान् में विश्वास ही नहीं कर सकता। निस्सन्देह वह सिद्धान्त किसी युक्तिपूर्ण मनुष्य के सामने नहीं टिक सकता, किन्तु मेरा विश्वास है, श्रीमान्, कि रात-दिन हम कहते हैं कि धर्म का हमारे विधान से कोई सम्बन्ध नहीं होगा और धर्म हमारा व्यक्तिगत मामला है। मैं निस्सन्देह भगवान पर विश्वास करता हूं और मैं धर्म को अपना निजी मामला समझता हूं। किसी को मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि आप भगवान पर किस रूप में और किस प्रकार विश्वास करते हैं और धर्म के विषय में आपके क्या विचार हैं। भारत में हमारी यह भावना है कि ईश्वर धर्म का प्रतीक है; और श्रीमान्, हम जानते ही हैं कि धर्म के नाम पर इस देश में कैसी नाशकारी बातें होती रही हैं; प्रत्येक जाति ईश्वर पर अपने ही तरीके से

[श्री आर.के. सिधवा]

विश्वास करती है। हिन्दुओं का विश्वास बिल्कुल अलग है, मुसलमानों का सर्वथा भिन्न है, और पारसियों और ईसाइयों की यही बात है। अतः मैं नहीं चाहता कि हमारे विधान में 'धर्म' शब्द की बाधा होनी चाहिये, किन्तु यदि मित्रों को भगवान् शब्द के रखने से तसल्ली प्राप्त होती है, और उनको इससे संतोष होता है तो उन्हें रख लेने दो। मैं तो यही कहना चाहता हूं, श्रीमान्, कि यह अधिक अच्छा होता यदि 'ईश्वर' शब्द तथा धार्मिक दृष्टिकोण को रखा ही न जाता। मैं तो वास्तव में इसको अधिक समझता कि प्रधान को शपथ लेते समय जनता का स्मरण करना चाहिये था। उसे कहना चाहिये था कि जनता की उपस्थिति में.....

***उपाध्यक्षः** क्या आप इस संशोधन का सुझाव दे रहे हैं?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं तो केवल आयर के विधान से यह बात उद्धृत कर रहा हूं। वहां प्रधान समस्त देश की जनता के नाम पर शपथ लेता है। वह कहता है कि "मैं समस्त देश की जनता के समक्ष शपथ लेता हूं" और शपथ के अन्त में कहता है: "यदि मैं शपथ को तोड़ूं तो राज्य मुझे कठोरतम दण्ड दे सकता है"। मैंने आज प्रातः इस विषय पर उपदेश सुने हैं कि प्रधान को सच्चा, ईमानदार तथा विश्वसनीय व्यक्ति होना चाहिये, और जयपुर-अधिवेशन की चर्चा भी की गई थी। पर प्रधान यह नहीं कहता कि "यदि मेरे ऊपर प्रवृत्त कर्त्तव्यों को मैं पूरा नहीं करूंगा तो मुझे कठोरतम दण्ड मिल सकता है और यह निश्चयोक्ति मैं देश की जनता के समक्ष करता हूं।"

***उपाध्यक्षः** मैं वास्तव में देखता हूं कि आप संशोधन संख्या 1147 को पेश कर रहे हैं और उसके शब्दों को दोहरा रहे हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** यह तो आयर के विधान के शब्द हैं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्षः** मैं इससे इन्कार नहीं करता पर आप उस संशोधन में से उद्धरण दे रहे हैं जो कि आप पेश नहीं करना चाहते थे।

***श्री आर.के. सिधवाः** यह मेरा संशोधन नहीं है और यदि है भी तो मैं कहना चाहता हूं कि मैंने इसे अन्य विधान से लिया है जैसे कि इस परिषद् के कई विख्यात व्यक्तियों ने दूसरों से चीज़ें ली हैं।

***उपाध्यक्षः** बिल्कुल नहीं; मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि आप उस संशोधन अर्थात् संख्या 1147 में से उद्धरण दे रहे हैं जो कि आपने पेश नहीं किया।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। आप जो कुछ कह रहे हैं मैं उसे चुनौती नहीं दे सकता। मैंने तो केवल यही कहा था कि यह आयर के विधान की पुनरावृत्ति मात्र हूं।

***उपाध्यक्ष:** यह निस्संदेह वह संशोधन है जो आपके नाम में है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि शपथ ऐसी होनी चाहिये जो कि देश के लोगों के प्रति अधिक अनुरोध करती हो, जिनके हित और भलाई के लिये हम इस विधान का निर्माण कर रहे हैं।

***श्री एम. थिरूमाला राव** (मद्रास : जनरल): मैं नहीं जान पाता कि ज्यों ही मैं ध्वनियंत्र के निकट आता हूं, प्रकाश (बिजली) क्यों लुप्त हो जाता है। हम सबको अधिकाधिक प्रकाश की आवश्यकता है, विशेषतया मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा की वक्तृता के पश्चात् जिन्होंने भगवान् का बहुत विरोध किया है तथा जो विधान से ईश्वर को हटाना चाहते हैं। श्रीमान्, यह अद्भुत बात है कि जिन ईमानदार और भगवान् से डरने वाले ने इस विधान का मसौदा बनाया है वे भगवान से कितने डरते हैं कि उन्होंने उसे विधान से पूर्णत: निकाल ही दिया है! श्रीमान्, मैं परिषद् को बताना चाहता हूं कि गत 30 वर्षों में, कांग्रेस का संघर्ष संसार के एक महानतम व्यक्ति के नेतृत्व में आदर्शवाद के निश्चित पथ पर चलाया गया था। सत्य तथा अहिंसा हमारे शस्त्र थे और अत्यधिक संख्या में जनसाधारण ने उनका प्रयोग किया है और इन वर्षों में, जिन लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध किया था उनके हृदय में एक कल्पना है कि स्वतन्त्रता किस प्रकार की होनी चाहिये। महात्मा गांधी की इस देश में केवल राजनीतिक नेता होने के कारण ही पूजा नहीं होती है किन्तु इस कारण होती है कि वे एक सज्जन थे, वे ऐसे व्यक्ति थे जो राष्ट्र की भावना के प्रतीक थे और दूर देशों से बहुत से आक्रमणों को परास्त कर जीवित रहे थे। संसार की सभ्यतायें हमारे समक्ष आईं और चली गईं; मिस्र और बेबीलोन की सभ्यतायें नष्ट हो गईं, किन्तु इन सब शताब्दियों के पश्चात् भी भारत की सभ्यता अब तक जीवित है, क्योंकि इस राष्ट्र की रूपरेखा में कुछ ऐसी बात है जिसकी जड़ आध्यात्मिक भावनाओं में जमी हुई है। यदि आप उस आध्यात्मिक भावना को मिटा देंगे, तो भारत को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है और बहुत पहले ही इसका अस्तित्व मिट जाना चाहिये था। हम सब महात्मा गांधी के योग्य पथ-प्रदर्शन के अन्तर्गत लड़े रहे हैं और महात्मा गांधी ने हमें अपने देश के शासन के सम्बन्ध में कुछ सुनिश्चित आदर्शों की प्रेरणा दी। यह दुर्भाग्य है, अथवा व्यंग है, कि इस विधान

[श्री एम. थिरूमाला राव]

के मसौदा लिखने का कार्य उन लोगों के हाथों में पड़ गया, जिनके जीवन के किसी अंग पर गांधी जी के आदर्शों की छाप नहीं पड़ी है, कदाचित् एक ही अपवाद मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी का है।

***श्री के. एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): धन्यवाद, श्रीमान्!

***श्री एम. थिरूमाला राव:** अत: यह निराशास्पद बात है कि हम सब अपने लोगों की विचारधारा को नहीं समझ पाये हैं। जहां भी हम गये, हमने सदा यही कहा कि हमारे जीवन का आधार ही धर्मपरायणता है। पश्चिमी देशों में जाइये। वहां बादशाह देश और ईश्वर का प्रतीक होता है। बादशाह जाति के धर्म का रक्षक होता है और आपने पश्चिमी विश्वविद्यालयों को भी देखा है। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज—और समस्त प्राचीन विश्वविद्यालय प्राचीनतम गिरजों में, जो कि विश्वविद्यालयों के साथ-साथ बने हुये हैं, परम्परा का पाठ पढ़ाती हैं—इन प्राचीन विद्यानगरों ने धर्म अथवा राष्ट्र के आध्यात्मिक शिक्षण को प्रथम स्थान दिया है। अत: मेरा यह सुझाव है कि यह विधान इस देश की सच्ची भावनाओं, सच्ची सभ्यता का अभिरक्षण करे। इसका अभिरक्षण कैसे किया जाये? नास्तिकों के लिये प्रावधान कर दिया गया है। मसौदा-समिति के प्रधान को, जिसके हृदय में नास्तिकों के लिये, जो कि देश में अगण्य हैं, ऐसा स्थान है, देश के बहुसंख्यक लोगों की आध्यात्मिक बपौती के रक्षार्थ अधिक आतुरता दिखानी चाहिये थी! जो जयपुर गये थे, उन्होंने देखा होगा कि देश का वास्तविक जीवन अब भी जीवित है। सहस्त्रों लोग हृदयों में सच्चा आवेश लिये तथा अश्रुओं से पूर्ण नेत्रों से सरदार पटेल अथवा पण्डित नेहरू की ओर देख रहे थे, वे ही राष्ट्र के सच्चे प्रतीक हैं। मुझे कुछ सिखों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ; लगभग 15-20 हमें कह रहे थे।

"हमको दर्शन पूरा हो गया।"

'दर्शन' शब्द कहां से आया? यह धर्म का शब्द है। यदि वे हमारे नेताओं को देख रहे थे तो इसका यह कारण नहीं है कि उनके पीछे सुनियन्त्रित प्रकाशन-संस्थायें अथवा सुनियन्त्रित सेना है। महात्मा गांधी इसलिये महान् नहीं थे कि उनका समर्थन करने के लिये पश्चिम के अधिनायकों हिटलर, स्टालिन और मुसोलिनी के समान ही, सुनियन्त्रित प्रकाशन-संस्था, राज्य अथवा सेनायें थीं। ज्यों ही तुम अपने दैनिक जीवन में से, जो कि विधान में प्रतिबिम्बित होगा, भगवान् को निकाल दोगे, त्यों ही आपको अपने अस्तित्व रखने का भी अधिकार नहीं रहेगा।

पश्चिम के लोगों ने रूस के नियन्त्रित राज्य में से भगवान् को निकाल दिया है, जर्मनी और इटली के नियन्त्रित राज्य में वे लोग भूल गये, और उन पर जो दुर्भाग्य पड़ा है वह आप देख ही चुके हैं। अतः मेरा यही कहना है कि यदि लोगों की वास्तविक भावना को आप व्यक्त करना चाहते हैं तो ईश्वर का समर्थन करिये; ईश्वर तो वास्तव में ऐसा व्यापक शब्द है; ईश्वर सर्वव्यापक शब्द है। यह तो जातिवाचक संज्ञा है जिसे प्रत्येक धर्म ने व्यक्तिवाचक नाम दे दिया है।

मैंने अपने माननीय मित्रों, प्रोफेसर के.टी. शाह और श्री आर.के. सिधवा के संशोधनों को देखा है। आप चाहते हैं कि एक व्यक्ति को शपथ लेनी चाहिये और यह निश्चयोक्ति करनी चाहिये कि वह समुचित रूप से व्यवहार करेगा, वह ईमानदार होगा और वह सब कुछ होगा। यह सब बातें परमात्मा में निहित हैं; उस एक शब्द परमात्मा में और भी अधिक बातें सन्निहित हैं जिसके नाम पर आपसे शपथ लेने के लिये कहा जाता है और आप कहते हैं कि आप अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों को पूरा करने में ईश्वर के नाम को परिभाषित नहीं करेंगे। अतः श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने योग्यतापूर्वक जो संशोधन पेश किया है वह हमारे देश की सच्ची भावनाओं का परिचायक है। मुझे विश्वास है कि यह विधान इस राष्ट्र को पूर्व के महानतम राष्ट्र के रूप में उन्नत करने तथा संसार के नेता के रूप में इस देश की सच्ची संस्कृति को समुन्नत करने के लिये अन्तिमरूपेण स्थापित हो, उससे पहले इसका पूरा कायाकल्प ही अपेक्षित होगा। अतः श्रीमान्, यह संशोधन समय निकल जाने पर पेश नहीं हुआ है और मुझे प्रसन्नता है कि पार्टी ने इसे मान लिया।

***एक माननीय सदस्यः** किस पार्टी ने मान लिया है?

***श्री एम. थिरूमाला रावः** मेरे विचार में सब समझ गये होंगे कि मेरा 'पार्टी' से क्या प्रयोजन है। मुझे आशा है कि परिषद् इस संशोधन को एकमत से स्वीकार कर लेगी।

***श्री के.एम. मुन्शीः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में जो माननीय सदस्य मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन के विरुद्ध बोले थे वे यह समझ गये कि मेरे माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी का एक संशोधन था जो ईश्वर पर विश्वास न करने वालों को स्वतन्त्रता देता था कि वे शपथ के शब्दों की गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करें। परिषद् के समक्ष केवल यही प्रश्न है कि जब कोई व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास करता हो तो उसे ईश्वर की शपथ लेनी होगी अथवा किसी अन्य की! मेरे माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी के संशोधन द्वारा

[श्री के.एम. मुन्शी]

संशोधित रूप में मेरे माननीय मित्र श्री कामत का संशोधन सच्ची कसौटी निश्चित करता है कि जब कोई व्यक्ति वास्तव में ईश्वर पर विश्वास करता हो तो उसे ईश्वर की ही शपथ लेनी होगी और वह उसके नाम के बिना शपथ नहीं लेगा अथवा किसी और के नाम में शपथ नहीं लेगा। हम जानते हैं कि पुराने दिनों में लोग गोपुच्छ की अथवा पीपल-वृक्ष की शपथ लेते थे। आशय यही है कि शपथ ईश्वर के नाम पर ली जानी चाहिये, जिस पर मनुष्य को गम्भीरतम विश्वास होता है।

मेरे मित्र गत वक्ता ने कृपा करके मेरी चर्चा की थी कि विधान-परिषद् के समस्त सदस्यों में से मैं महात्मा गांधी से अधिक निकट-सम्पर्क में रहा हूं। मैं नहीं जानता कि यह सत्य है अथवा नहीं। किन्तु मुझे भी यह विचार उत्पन्न हुआ है—मैं अबाधरूपेण कह सकता हूं—कि हम इस विधान में ईश्वर के नास्तित्व पर बल दे रहे हैं। मेरी सम्मति तो यह थी कि हमें परमात्मा का नाम प्रस्तावना में ही रखना चाहिये: किन्तु व्यापक विचारधारा भिन्न थी। किन्तु जब शपथ का प्रश्न आता है तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि किसी को ईश्वर के नाम से शर्म क्यों आनी चाहिये। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह बात असाम्प्रदायिक राज्य की कल्पना के विरुद्ध कैसे जाती है। असाम्प्रदायिक राज्य शब्द का तो प्रयोग साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक राज्य के विपरीत होता है। इसका आशय यह है कि नागरिकता धार्मिक विश्वासों पर आधारित नहीं होगी, प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी धर्म का मानने वाला हो, कानून के समक्ष समान है, उसके व्यावहारिक अधिकार समान हैं, उसे राज्य से लाभ उठाने का और अपना जीवन बिताने का समान अवसर है; इसके अतिरिक्त उसका और कुछ आशय नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ ईश्वरविहीन राज्य नहीं है। यह ऐसा राज्य नहीं है जो धर्म को मिटाने अथवा उसकी उपेक्षा करने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हो। यह ऐसा राज्य नहीं है जो इस देश में धार्मिक विश्वासों की उपस्थिति को ही न माने। वास्तव में प्रत्येक राज्य उसे मानता है। हमने धर्म के विषय में मूलाधिकारों को पारित करके इसे मान लिया है। धर्म मनुष्य की सर्वोपरि सम्पत्ति है और धर्म पर विश्वास करने वाला, इस असाम्प्रदायिक राज्य के अन्तर्गत भी, उस सम्पत्ति का अपनी इच्छानुसार अधिकारी होगा। कोई राज्य जो ईश्वर को मिटाने का प्रयत्न करेगा, शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा।

हमें इस बात को मानना होगा ही कि भारत एक धर्मपरायण देश है। जब हम असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में बातें करते हैं, तब भी हमारी विचारधारा और

जीवनधारा धार्मिक दृष्टिकोण से ओतप्रोत होती है। जब महात्मा गांधी की मृत्यु हुई थी, तब उन्हें श्मशान घाट तक राजकीय जलूस में ले जाया गया था और अन्त में धार्मिक संस्कार हुये थे। उनकी भस्म को भारत की सौ नदियों में प्रवाहित किया गया था। मैं आपको अपना अनुभव बताता हूं। जब गांधी जी की भस्म को हैदराबाद में संगम पर प्रवाहित किया गया था, तब हैदराबाद रियासत ने, जैसे भी वह उस समय थी, सरकारी तौर पर उसमें भाग लिया था। 2,00,000 से भी अधिक मुसलमानों ने उसमें भाग लिया था। वहां संगम पर सारे संस्कार हिन्दू रीत्यनुसार किये गये, और भीड़ में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और अन्य जातियों के लोग भी थे। इससे पता चलता है कि भारत का आन्तरिक मन अत्यन्त धर्म-परिपूर्ण है। हमें इस पर शर्मिन्दा नहीं होना चाहिये। भारत के लिये वह दुर्भाग्य का दिन होगा, यदि किसी कानूनी कुचाल द्वारा हमारा राज्य अधार्मिक, नास्तिक राज्य बन जाये। हमें यह भय नहीं होना चाहिये कि असाम्प्रदायिक राज्य का जनता की धार्मिक भावनाओं से सामंजस्य नहीं होता।

जैसे कि एक माननीय सदस्य पहले ही कह चुके हैं, यदि भारत संसार को कुछ दे सकता है तो केवल जीवन का दर्शन ही दे सकता है जो आध्यात्मिकता तथा हमारे मध्य भगवान् की व्यापकता से परिपूर्ण है। यदि भारतीय संस्कृति का कुछ भी आशय है तो यही है कि ईश्वर है और यदि मनुष्य उस परमात्मा का साधन बन जाये तो वह इसी जीवन में देवत्व की महत्ता को प्राप्त कर सकता है। जिस साधन द्वारा महात्मा गांधी ने विद्यमान राष्ट्रीयता की उत्पत्ति की तथा हमारे लिये स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की है, वह साधन भारत की धर्मपरायणता ही है। भारत धर्मपरायण ही रहेगा और भारत का राज्य धर्म-विरोधी होने के अर्थ में कभी असाम्प्रदायिक नहीं बन सकता। इसका यह अर्थ नहीं कि ईश्वर पर विश्वास करने वाला देशसेवा की प्रतिज्ञा करते समय ईश्वर की शपथ नहीं ले सकता। इस विषय पर मेरा यही निवेदन है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, समस्त धर्म कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा अथवा आज्ञा के बिना कुछ नहीं होता। अत: यह तर्कसंगत परिणाम हुआ कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत ईश्वर की इच्छा से ही ईश्वर के नाम को रखने का प्रस्ताव रखने के लिये खड़े हुये थे। और मैं भी यहां ईश्वर की इच्छा और आज्ञा से ही यह कहने आया हूं कि वह अपना नाम यहां बिल्कुल नहीं चाहता। मैं यहां श्री कामत के संशोधन का विरोध करने आया हूं। मैं इस विषय में युक्तियां बाद में पेश करूंगा।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

सर्वप्रथम, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 49 को विधान से निकाल ही दिया जाये। ऐसे अनुच्छेद को रखने से क्या लाभ है जिसमें कहा गया हो कि सर्वोच्च अधिकारी प्रधान को प्रधान बनने के समय शपथ लेनी होगी अथवा निश्चयोक्ति करनी होगी? क्या आवश्यकता है? मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर, जोकि विख्यात वकील हैं, जानते हैं कि 99 प्रतिशत गवाह, जो कि न्यायालय में जाकर सर्वशक्तिमान प्रभु के नाम पर शपथ लेते हैं अथवा निश्चयोक्ति करते हैं, वहां असत्य ही बोलने जाते हैं। (*बाधा*)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जब तक गवाह सहमत न हो वह कभी भगवान् के नाम पर शपथ नहीं लेता। (*बाधा*)

***उपाध्यक्ष:** अच्छा हो यदि माननीय सदस्य बाधा न डालें।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं समझाता था कि माननीय मि. नजीरुद्दीन अहमद को, जो बर्दमान के वकील हैं—मुझे पता लगा है कि वे फौजदारी के बहुत अच्छे वकील हैं—पता होगा कि जब कोई गवाह गवाही देने जाता है, तब वह कहता है:

"अल्लाह या भगवान को नाजिर होकर बोलते हैं।"

वह कहता है 'ईश्वर के नाम पर मैं कहता हूं.....।

मैं कह रहा हूं कि अनुच्छेद 49 को हटा देना चाहिये। मैं लिखित सूचना दिये बिना ही यह प्रस्ताव कर सकता हूं क्योंकि मैं तो सारी चीज़ के ही विरुद्ध हूं। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कि इस विधान को हमने, मानवों ने बनाया है। हम इसे सम्पूर्ण विधान नहीं कह सकते। कोई भी ऐसा नहीं कह सकता। सर्वशक्तिमान् का नाम तो पूर्ण है, अत: एक अपूर्ण विधान में उसका नाम क्यों रखा जाये? उसका इतना मूल्य क्यों घटाया जाये तथा उसे यहां क्यों रखा जाये? श्रीमान्, इस विधान का अनुवाद किया जायेगा और वह अनुवाद परिषद् के समक्ष आयेगा और पारित होगा। आप क्या अनुवाद रखेंगे? आप क्या नाम रखेंगे? हम सब जानते हैं कि भगवान एक है किन्तु हमने हजारों ईश्वरों की उत्पत्ति कर दी है और आपका भगवान मेरे भगवान से भिन्न है और श्री सिधवा का भगवान किसी और के भगवान से पृथक् है। आप किसके भगवान को रखेंगे? श्री सिधवा किसी ऐसे भगवान के नाम पर शपथ क्यों लेंगे जो उनके ईश्वर का नाम नहीं हो? फ़र्ज किया इसका अनुवाद करके 'भगवान' शब्द रखा जाता है, तो क्या आप पारसी

अथवा ईसाई अथवा किसी अहिन्दू को प्रधान बनने पर यह शब्द कहने के लिये बाध्य कर सकते हैं? या तो आप उसे प्रधान बनाना ही नहीं चाहते अथवा यदि वह बन जाये तो ऐसी शपथ नहीं ले सकता। उसका नाम क्यों रखते हैं? उसका हम अपने घरों पर जैसा चाहें पूजन करें। मैं श्री सिधवा के तर्कों को दोहराना नहीं चाहता। इस विषय पर उन्होंने बहुत योग्यता से भाषण दिया है। ऐसे भी भारतीय हैं जो भगवान पर बिल्कुल विश्वास करते ही नहीं। वे इस शपथ को कैसे लेंगे? इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 49 हटा दिया जाये।"

***रेवरैण्ड जैरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं श्री कामत के इस संशोधन पर कुछ शब्द बोलने के लिये बिना आवेग के खड़ा नहीं हुआ हूं। मुझे विश्वास है कि इस परिषद् में मेरे माननीय सहयोगियों को कुछ सन्देह नहीं होगा कि मैं जो कुछ कहने वाला हूं उसका क्या आशय होगा। इस परिषद् में मैंने अनेक बार इस गम्भीर विषय की चर्चा छेड़ी है, अत: मैं संतोष के साथ श्री कामत के सुझाव अथवा संशोधन को देखता हूं और उसका हार्दिक समर्थन करता हूं। तदपि, श्रीमान्, इस संशोधन को स्वीकार करते हुये और इसका स्वागत करते हुये, मेरे मन में यह भावना उत्पन्न हो ही जाती है कि इस अत्यन्त नम्र सुझाव के 'सरकारी' अथवा 'वैधानिक' पहलू को मेरे कुछ पूर्व वक्ताओं ने आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया है। यदि मुझे ऐसा कहने की अनुमति दी जाये, तो हमारे माननीय मित्र श्री मुन्शी ने ठीक बात की है, सब बातों का ठीक मूल्य आंका है। इस संशोधन का क्या आशय है? क्या इसके द्वारा विधान अथवा विधान-निर्माता निकाय, ईश्वर में तथा सुपरिभाषित एवं एकमत से मान्य ईश्वर की कल्पना में गम्भीर तथा पूर्ण विश्वास प्रकट कर देता है? यदि ऐसा होता तो इस पर आपत्ति की जा सकती थी, किन्तु यहां कोई ऐसा आशय नहीं है। यहां तो केवल यही कहा गया है कि जब हमारे देश में सर्वाधिक सम्मान का पद देश की इच्छानुसार एक उच्च व्यक्तित्व, सदाचार तथा योग्यता के मनुष्य को दिया जा रहा है, तब हम चाहते हैं कि वह उस पद पर प्रतिष्ठित होते समय देश-सेवा का संकल्प ऐसी विधि से करे जो कि हमारी कल्पनानुसार अत्यधिक बन्धनकारी तथा गम्भीर हो; हम चाहते हैं कि वह अपनी शक्ति देश-सेवा की अपनी आन्तरिक कार्येच्छा के गम्भीरतम श्रोतों से प्राप्त करे। और यह जानते हुये कि हमारे देशवासियों का अत्यधिक बहुमत, हिन्दू अथवा मुसलमान अथवा ईसाई

[रेवरैण्ड जैरोम डीसूजा]

अथवा पारसी अथवा सिख सर्वशक्तिमान् परमात्मा में विश्वास के कारण ही अपना नैतिक बल प्राप्त करते हैं, यह संशोधन उस निर्वाचित, उस असाधारण व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि यदि वह चाहे तो उस पवित्र नाम पर ही देश-सेवा का व्रत ले। हम उसे अवसर देना चाहते हैं कि वह अपनी मति-अनुसार अत्यन्त गम्भीर तथा अत्यन्त बन्धनकारी संकल्प करे। हम उस पर यह लादतें नहीं हैं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो किसी न किसी कारण से उस विशेष तरीके से शपथ न लेना चाहता हो तो उसके लिये वैकल्पिक शपथ का सुझाव रखा गया हैं। इस संशोधन द्वारा विधान-निर्माताओं का तथा हमारा केवल यही आशय है कि हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारे देश में अधिकांश जनता आस्तिक है और निस्सन्देह कोई भी व्यक्ति जो कि इस उच्च पद पर आसीन होगा, वह यदि सर्वशक्तिमान् प्रभु के नाम पर शपथ लेगा तो उसमें पद के प्रकार्यों को बहुत निष्ठापूर्वक पूरा करने का उत्साह होगा। इस बात को सत्य मान कर, हम केवल उस तथ्य का उल्लेख कर देते हैं, किन्तु किसी धर्म को अंगीकार नहीं करते। अत: मैं नहीं समझता कि इसका अर्थ असाम्प्रदायिक विधान की भावना के विपरीत क्यों समझा जाये। दूसरी बात एक असाम्प्रदायिक विधान भी, जैसे कि श्री मुन्शी ने कहा है, ईश्वरहीन विधान नहीं होता। यह ईश्वर की भावना के विरुद्ध नहीं है। केवल यह बात है कि यह किसी मत, धर्म अथवा वर्ग में भेदभाव नहीं करता, किन्तु समस्त जनता के विश्वासों, भावनाओं, इच्छाओं, आशाओं तथा आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखता है। यदि यह इस गम्भीर सत्य की, ईश्वर में हमारे सब लोगों के विश्वास की, अवहेलना कर देता है तो यह उन लोगों की भावना के अनुकूल नहीं होगा। मेरे जो माननीय मित्र पूछते हैं कि 'विधान में भगवान् को रखने से पहले क्या हमारे सम्मुख भगवान् की कोई एकविध तथा स्पष्ट कल्पना है?' उनसे मैं कह सकता हूं 'क्या ऐसा कोई है जिसे सामान्यरूपेण तथा व्यापक तरीके से यह ज्ञात न हो कि इस शब्द से हमारा क्या आशय है?' इस भौतिक तथा अनित्य संसार के परे जो सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य है, उसके लिये प्रयुक्त इस शब्द को स्वीकार करने से पहले क्या यह अपेक्षित है कि हम दार्शनिकों तथा अध्यात्मवादियों के वाद-विवाद में पड़ें और उनके सूक्ष्म अन्तरों को समझें? हम यहां पर इस अनित्य, भौतिक संसार के पीछे जो सर्व सत्य है उसके अनन्त मूल का आधार ले रहे हैं। और इस विषय में हम सब एक हैं, ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, पारसी तथा सब जानते हैं कि समय और आकाश में हम जो कुछ देखते हैं, उसके परे कुछ है जो अपरिवर्तनीय है, जो अनादि अनन्त है—जो न्याय और शान्ति और अच्छाई और

एकरूपता के लिये प्रयत्नशील है। भ्रातृत्व, शान्ति, न्याय, कानून, प्रगति की हमारी गम्भीरतम भावना उसी विश्वास और उसी सत्य पर आधारित है, उसके द्वारा प्रेरित है तथा उस पर ही निर्भर है। अत: मेरे माननीय साथी, इस संशोधन की स्वीकृति के लिये इस व्यापक तथा सामान्य धारणा को काफी मान लेंगे और हमें इस बात की अनुमति देंगे कि इसे प्रधान के पदासीन होने के तरीकों में शामिल कर दिया जाये। ऐसा करके हम ईश्वर की कल्पना का मूल्य नहीं घटा रहे हैं। हम इसे सब पर, सब समयों के लिये तथा सब स्थानों पर नहीं लाद रहे हैं। किन्तु यहां अत्यन्त पवित्र तथा गम्भीर कर्त्तव्य पर आसीन होते समय हमारे देश के निर्वाचित नेता से, जिसके विषय में लगभग सदा ईश्वर-परायण होने की धारणा है, कहा जाता है कि, यदि वह आस्तिक है तो वह उसके पवित्र नाम पर तथा अपनी आत्मा की सारी शक्ति एवं अपने विश्वासों के बल पर यह संकल्प करे कि उसे जो कर्तव्य सौंपे जाते हैं उन्हें वह पूर्ण करेगा। क्या हमें इस विषय में किंचित् भी सन्देह हो सकता है कि यदि हम निश्चयोक्ति की यह भाषा रखें तो उसके अन्तर की गम्भीरता पर इसका प्रभाव पड़ेगा तथा वह अवश्य ही अपने कर्त्तव्य को ऐसे प्रकार से पूरा करेगा जिससे कि यदि कम बन्धनकारी शब्द रखे गये तो कदाचित् वह न कर सके।

अत: मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि वह अन्य धारणाओं तथा विचारों पर आधारित समस्त आपत्तियों को छोड़ दे तथा इस संशोधन को स्वीकार कर ले। यदि इसको ठीक समझा जाये तो मैं कह सकता हूं कि इससे राज्य के आधारभूत असाम्प्रदायिक गुण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और मेरी प्रार्थना है कि वह इस संशोधन को व्यापक स्वीकृति देने की कृपा करें। इससे, निस्संदेह इस देश के लोग ऐसा नहीं समझेंगे अथवा समझने के लिये बाध्य होंगे कि हम किसी मत विशेष को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार कर रहे हैं, किन्तु वे कम से कम यह समझ जायेंगे कि कानून-निर्माता तथा विधान-निर्माता इस बात को समझते हैं कि इस देश के लोगों को धर्म पर दृढ़ विश्वास है और इस बात को पूरी तरह समझ कर हम कार्य-साधन के लिये ऐसे सिद्धान्त को अपना रहे हैं और ऐसी आदर्श भावना का सहारा ले रहे हैं जो कि हमें लोगों की पूरी सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करा देगी और जिनसे हमारे देश को अवश्य लाभ होगा। अत: श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री विष्णु कामत के संशोधन का पूरे हृदय से समर्थन करता हूं और परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि इसे एकमत से स्वीकार कर ले। (*हर्ष ध्वनि*)

***उपाध्यक्ष:** डॉक्टर अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन को अर्थात् संशोधन संख्या 1144 को तथा श्री त्यागी के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में श्री कामत के संशोधन संख्या 1146 को भी स्वीकार करने के लिये उद्यत हूं।

पहले संशोधन के सम्बन्ध में, जो कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने रखा था, अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं है। मेरे नाम में जो संशोधन था उससे यह निस्संदेह अच्छा है।

दूसरे संशोधन संख्या 1146 के विषय में, मैं समझता हूं कि मुझे इस प्रश्न के गुणावगुण पर बोलने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं इसे श्री त्यागी द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर रहा हूं। किन्तु कदाचित् यह अच्छा होगा कि मैं इस बारे में कुछ शब्द कह दूं कि मसौदा-समिति ने ही मौलिक मसौदे में 'ईश्वर के नाम पर' यह शब्द क्यों नहीं रखे थे। श्रीमान्, मेरे विचार में मसौदा-समिति ने इस विषय पर पूर्णत: विचार ही नहीं किया था अत: मैं समुचित कारण नहीं बता सकता कि उन्होंने इन शब्दों को पहले क्यों नहीं रखा।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि यह ऐसा विषय था जिस पर कुछ विचार करना अपेक्षित था। यदि परिषद् अनुमति दे तो मैं इस विषय पर अपने निजी विचार प्रकट करना चाहता हूं। इस विषय में मेरे यह विचार थे। जहां तक मेरा अध्ययन है, 'ईश्वर' शब्द का विभिन्न धर्मों में विभिन्न महत्व है। ईसाई और मुसलमान ईश्वर को एक कल्पना के समान ही नहीं मानते बल्कि ऐसी शक्ति मानते हैं जो संसार पर राज्य करती है और इस कारण आस्तिकों के नैतिक और आध्यात्मिक कार्यों पर शासन करती है। जहां तक हिन्दू धर्म का सम्बन्ध है, मेरे विचार से—और मैं पूर्णत: गलती पर हो सकता हूं, मैं इस विषय का ज्ञानी होने का दावा नहीं करता—मेरा ख्याल था कि 'ईश्वर' शब्द और बड़ा शब्द प्रयोग करे तो 'परमेश्वर' एक आशय का, एक कल्पना का निचोड़ ही है। जैसे कि मैंने कहा है, गणित की भाषानुसार आप संख्याओं को साथ रख कर कोई समान संख्या ढूंढ सकते हैं जिसे आप 'स' कह सकते हैं जो कि केवल निचोड़ होगा। इसके पीछे कोई ठोस वस्तु नहीं है। हिन्दू दर्शन में यदि कोई ठोस कल्पना है तो वह 'ब्रह्मा', 'विष्णु', 'महेश', 'शिव', 'शक्ति' है। हिन्दू इन्हें ही संसार का शासन करने वाली शक्तियां मानते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मसौदा-समिति के लिये इस आधार पर चलकर बहुत से शब्द रखना कठिन हो जाता अर्थात् परमेश्वर, उसके नीचे रेखा खींच कर शिव, फिर विष्णु, फिर ब्रह्मा, फिर शक्ति

आदि आदि रखने पड़ते। इस झगड़े के कारण ही हमने इस मामले को अनिश्चित छोड़ दिया जैसा कि आप मसौदा-समिति के कार्य में देखते हैं।

***श्री ए.वी. ठक्कर** [संयुक्त राज्य काठियाड़ (सौराष्ट्र)]: किन्तु सबके ऊपर भी एक है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु मुझे पूर्ण प्रसन्नता है कि यह संशोधन पेश किया गया है। अब, कुछ सदस्यों ने इस संशोधन पर आपत्ति की है। उन्हें भय है कि 'ईश्वर' शब्द के रखने से असाम्प्रदायिक घोषित किये हुये राज्य के इस गुण में अन्तर पड़ जायेगा। मेरे विवेकानुसार तो 'ईश्वर' शब्द के रख देने से वह प्रश्न तो उठता नहीं। 'ईश्वर' शब्द रखने का कार्य तो सीधा-सा है। विधान प्रधान के लिये कुछ कर्त्तव्य निर्धारित करता है। यह कर्त्तव्य दो प्रकार के हैं, कुछ तो ऐसे कर्त्तव्य हैं जिनके लिये कानूनी आधार हैं और कानूनी दण्ड की व्यवस्था की गई है, और कुछ ऐसे हैं जिनके लिये कानूनी नियम नहीं है और कोई दण्ड भी प्रावहित नहीं है। परिणामत:, प्रत्येक विधान में यह प्रश्न सदा उठता है। ऐसे कर्त्तव्यों के लिये, ऐसे कार्यों के लिये जो किसी अधिकारी के लिये निश्चित किये गये हैं किन्तु जिनके लिये कानून द्वारा कोई आधार अथवा दण्ड निश्चित करना सम्भव नहीं है, क्या आधार हो? यह स्पष्ट है कि यदि हमारा ऐसा विश्वास और निश्चय नहीं है, कि यह नैतिक कर्त्तव्य, जिनके लिये कि दण्ड का अथवा कानूनी आधार नहीं है, केवल पवित्र घोषणामात्र है, तो हमें कोई न कोई आधार अवश्य रखना चाहिये। कुछ लोगों के लिये ईश्वर ही आधार है। वे समझते हैं कि यदि वे ईश्वर के नाम पर शपथ लेंगे तो वह ऐसे कर्त्तव्यों का आवश्यक आधार होगा जो कि पूर्णत: नैतिक है और जिनके लिये कोई आधार नहीं रखा गया है, क्योंकि ईश्वर ब्रह्माण्ड की संचालक-शक्ति है और उनके व्यक्तिगत जीवन की भी संचालक-शक्ति है।

ऐसे भी लोग हैं जो विश्वास करते हैं कि उनकी आत्मा ही पर्याप्त आधार है। उन्हें किसी बाह्यशक्ति ईश्वर की आवश्यकता नहीं है जो कि प्रहरी के समान उनके कार्यों का ख्याल रखे। वे समझते हैं कि उनकी आत्मा से निकली हुई गम्भीर निश्चयोक्ति ही पर्याप्त आधार है। यदि माननीय सदस्यों ने इस विषय का इतिहास पढ़ा हो, जो कि श्री ब्रैडलो तथा हाउस ऑफ़ कामन्स के संघर्ष में निहित है, तो वे समझ जायेंगे कि बहुत पहले 1880 के लगभग श्री ब्रैडलो ने हठ किया था कि वह सर्वथा सदाचारपूर्ण व्यक्ति है, उसकी आत्मा पूर्ण चेतन है, और यदि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वह शपथ ले तो उसकी आत्मा उसे सुपथ पर रखने के लिये मानो पर्याप्त आधार है। हाउस ऑफ़ कामन्स में बहुत समय तक संघर्ष हुआ, जिसमें एक अवसर पर तो श्री ब्रैडलो को सारजैण्ट एट आर्म्स (प्रहरी) ने लगभग जान से ही मार दिया था क्योंकि वे बिना शपथ लिये सभा में बैठते थे जिस पर उसने आपत्ति की थी, अन्त में श्री ग्लैडस्टन को झुकना पड़ा तथा एक अतिरिक्त अथवा वैकल्पिक शपथ की व्यवस्था करनी पड़ी जिसे गम्भीर निश्चयोक्ति कहते हैं। अतः इस संशोधन में जो प्रश्न उठा है उसका इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि राज्य किस प्रकार का है। राज्य धार्मिक है अथवा असाम्प्रदायिक, यह विषय तो विचाराधीन प्रश्न से सर्वथा भिन्न है। केवल यही प्रश्न उठा हुआ है कि प्रधान पर हम जो कर्त्तव्य लाद रहे हैं उसके लिये कुछ आधार रखा जाये या नहीं। यदि प्रधान यह सोचता हो कि ईश्वर एक विश्वसनीय मन्त्री है और यदि उसके नाम से शपथ नहीं लेगा तो वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सच्चा नहीं रहेगा, तो मेरे विचार में हमें चाहिये कि उसे ईश्वर के नाम पर शपथ लेने की स्वतन्त्रता दें। यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो ईश्वर को विश्वसनीय मन्त्री नहीं समझता हो तो हमें उसे निश्चयोक्ति करने और उस निश्चयोक्ति के आधार पर अपने कर्त्तव्य करने की स्वतन्त्रता देनी चाहिये।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि यह संशोधन ठीक है और मैं इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***उपाध्यक्षः** आपको मि. करीमुद्दीन और प्रोफेसर शाह के संशोधन पर कुछ नहीं कहना?

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि अनुच्छेद 49 में 'भारत के मुख्य न्यायाधीश' इन शब्दों क पश्चात् 'अथवा उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के सब से उच्च (सीनियर मोस्ट) न्यायाधीश जो कि उपलब्ध हो' ये शब्द जोड़ दिये जायं।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अगला संशोधन जिस पर कि मत लिये जाने हैं संख्या 1146 है। किन्तु वह श्री महावीर त्यागी के संशोधन के जैसा ही है और यदि श्री कामत सहमत हों तो मैं इस पर मत ले सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे श्री त्यागी के संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि उनके और मेरे संशोधन में केवल शाब्दिक अन्तर ही है।

***उपाध्यक्षः** तो फिर मैं श्री त्यागी के संशोधन पर मत लेता हूं जो कि संशोधन संख्या 1146 पर संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, श्रीमान्, श्री त्यागी द्वारा संशोधित रूप में मेरे संशोधन पर मत लिये जाने चाहिये।

***उपाध्यक्षः** हां, हां, वह तो है ही। मुझे यह पता नहीं था कि आप शब्दावली पर इतने दृढ़ हैं; आप इतनी बार उन्हें तोड़ते रहते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में 'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में शपथ लेता
'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में शपथ के प्रपत्र में 'और मैं अपने आपको भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में 'जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' इन शब्दों के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and will throughout the term of my office as such President so conduct myself as to leave no ground for any charge of seeking to promote my own interest or my family's aggrandisement, and that in any act,

[उपाध्यक्ष]

I may have to do or appointment I may have to make, I shall consider only the interest of the public service and of the country collectively.' "

(और मैं प्रधान के रूप में अपने पद की अवधि में ऐसा आचरण करूंगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी अभियोग के लिये कोई आधार न रहे, और मुझे जो भी कार्य करना पड़े अथवा नियुक्ति करनी पड़े, उसमें मैं केवल लोकसेवा और सामूहिक रूप से देश के हित का ही विचार करूंगा।)

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 49 को स्वीकार कर लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 49 को विधान में जोड़ दिया गया।

तत्पश्चात् परिषद् मंगलवार, 28 दिसम्बर सन् 1948 ई. के दिन के दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।